❀ श्रीहरिः ❀

श्रीभागवत-दर्शन

भागवती-कथा

(इकतालीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—:०:—

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

—:०:—

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

—:❀:—

तीय संस्करण] श्रावण सं० २०२१ विक्रमी [मू० १-२५ पैसे
००० प्रति

विषय-सूची

श्रीभागवतचरित

(भूमिका)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलपन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते,
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥✽
(श्री भा० १० स्क० ८७ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

विमल भागवतचरित स्वयं श्रीहरिने गायौ ।
शुद्ध सनातन ज्ञान मनुजने नहीं बनायौ ॥
मुनिवर ! सोचें आपु मनुजका चरित बनावें ।
यह समाधिको चरित चलित चित कैसे ध्यावें ॥
हरि, अज, नारद, व्यास शुक,क्रम-क्रमतें विस्तृत बन्यों ।
लिखवायौ प्रभु-दत्ततें, मापामें मैंने भन्यों ॥

✽श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं—"राजन् ! भगवान्की स्तुति करती हुई वेदकी श्रुतियाँ कह रही हैं—"हे ईश्वर ! आप जो शरीर धारण करते हैं, वह इसलिये कि आत्मतत्व अत्यंत दुर्बोध है उसका ज्ञान लोगोंको होजाय । ऐसे आपके चरित्ररूप महामृतसागरमें जो स्नान कर लेते हैं वे श्रम रहित होजाते हैं ऐसे जो विरले भक्तजन हैं वे मुक्तिकी भी इच्छा नहीं रखते ! वे लोग आपके चरणकमलोंका, हंसके समान सेवन करने-वाले भक्तोंके संगसे अपने पूर्वप्राप्त घरबार का भी परित्याग कर देते हैं ।

छप्पय, दोहा, सोरठा, स्तुति, भजन, पद तथा अन्यान्य छन्दों में जो नौसो पृष्ठ से अधिक का सुन्दर सचित्र सजिल्द भागवतचरित संकीर्तन-भवनसे प्रकाशित हुआ है, आजकी भूमिकामें मुझे उसीके सम्बन्धमें बताना है, उसीका संक्षिप्त इतिहास सुनाना है, उसका महात्म्य गाना है उसीका पुण्य परिचय पाठकोंको कराना है। आप कहेंगे, कि यह तो विज्ञापन है आत्म प्रशंसा है। पासमें पैसा हो चाहें जैसी अंट सन्ट पुस्तक छपा दो इसका इतिहास क्या बताना, इसके विषय में विशेष क्या बताना, कोई भगवान्की बात बताओ भक्त और भगवान्का गुण गाओ।

बात तो सत्य है, विज्ञापन तो है ही, इस विज्ञापनमें आत्मप्रशंसा से बच सकें सो भी बात नहीं। आत्मप्रशंसाको शास्त्रकारों ने मृत्युके तुल्य बताया है यह भी पता है, फिर भी इस कथनमें एक लोभ है, इस इतिहास पर पग पगपर प्रभु-कृपाकी अनुभूति है उस अनुभूति से पाठकों को अवश्य ही स्फूर्ति होगी वे भगवत्कृपाके महत्वको समझेंगे। मेरे विषयमें जो होता हो वह होता रहे। मैं तो किसीका यन्त्र हूँ, यन्त्री जो कराता है, करताहूँ बताने वाला जो बताता है जो संकेत करता है उसे लिखता हूँ। अब वह जाने उसका काम जाने।

सूत्रपात

बाल्यकाल ही ब्रजमंडल में जन्म होनेसे तथा परम्परागत संस्कारोंके कारण श्रीकृष्णने मेरे मनपर अपना सिक्का जमा दिया बाल्यकालमें जब मैं पाँच सात ही वर्षका हूँगा न जाने कहाँसे टेढ़ी टाँगवाली मुरलीमनोहरकी ताम्रमयी मूर्ति मेरी पूजामें आगयी। छोटी-सी वह सलोनी मनहारिणी मूर्ति कितनी दिव्य थी अब भी वह छटा मेरे मनसे नहीं हटती। श्रीकृष्णके सम्बन्ध की कितनी ही कविताएँ मैंने कठस्थ

करली थीं उनमें रसिक रसखान की सवैया मुझे अत्यन्त प्रिय थीं पीछे मैंने उनका संग्रह करके "रसखान पदावली" के नाम से टिप्पणी सहित छपाया भी था। स्यात् प्रयाग के हिन्दी प्रेस से वह पुस्तक अब भी मिलती है।

श्रीतुलसीकृत रामायण को देखकर बाल्यकाल से ही मेरी ऐसी इच्छा थी, कि इसी प्रकार यदि ब्रजभाषा के पद्यों में श्रीभागवत भी निकल जाय तो श्रीकृष्ण उपासकों के लिये एक सर्वोत्तम पाठ्य पुस्तक मिल जाय। श्रीसूरदास जी का सूरसागर श्रीमद्भागवत के ही आधार पर लिखा गया है, किन्तु वह गायन ग्रन्थ है, क्लिष्ट है सर्व साधारण के लिये वह नित्य पाठ के उपयोगी नहीं और ब्रज के रसिकों के जो लीला ग्रन्थ हैं, उनमें इतना अधिक मधुर रस है, कि अज्ञ लोग उसमें अश्लीलता का आरोप करते हैं, किन्तु यह उनकी भूल है, श्रीकृष्णावतार मधुर लीलाओं के ही लिये हुए हैं। श्रीरामावतार मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है और श्रीकृष्ण साकार मधुर रस के रसावतार हैं, फिर भी आवश्यकता से अधिक मीठा होने से मुँह भर जाता है और जिन्हें मीठा खाने का अभ्यास नहीं उन्हें अधिक मीठे से अरुचि हो जाती है। ब्रज के वीतराग रसिकों ने जो बानियाँ लिखी हैं उसमें इतना अधिक मीठा डाल दिया है, कि सर्व साधारण तो उसे पचा भी नहीं सकते अतः वे बानियाँ उच्चकोटि के भागवतों की निधि हैं हम जैसे साधारण लोगों का तो उन्हें पढ़ने का भी अधिकार नहीं।

श्रीमद्भागवत रसार्णव है, रस का इसमें सर्वत्र प्रवाह बहाया गया है। सभी रस इसमें अपने अपने स्थान पर उत्कृष्ट हैं, किन्तु मधुर रस तो षोडश कलाओं से इसमें विकसित हुआ है। इतना सब होने पर भी लोक मर्यादा का

निर्वाह किया है। अर्थात् मर्यादा के बाहर उसे नहीं जाने देने का प्रयास किया है। यद्यपि मधुर भाव का रस समुद्र जब उमड़ता है तब वह तटों का संकोच नहीं करता तब बन्धनों को छिन्न भिन्न कर देता है फिर भी भगवान् व्यास ने उसे बहुत सम्हाला है अधिकाधिक मर्यादा में रखा है। मेरी आन्तरिक इच्छा थी कि इसी पद्धति का अनुसरण करके व्रजभाषा में एक पद्य भागवत हो। यह तो मैं कभी स्वप्न में भी सोच ही नहीं सकता था, कि भगवान् मेरे इस काम को मेरे द्वारा सम्पन्न करावें। क्यों कि एक तो मैं विशेष पढ़ा लिखा भी नहीं, दूसरे जो भी आज तक मैंने लिखा है गद्य में लिखा है। पद्य का तो आज तक मैंने कोई ग्रन्थ ही नहीं लिखा।

जब 'भागवती कथा' लिखने की प्रभु प्रेरणा हुई, तो आरम्भ के दिन श्रीगणेश करने के लिए मैंने निम्न छप्पय लिखी—

श्रीनारायण विमल विशालापुरी निवासी।
नर नारायण ऋषी तपस्वी अज अविनाशी॥
माता वीणापाणि सरसुती वाणी देवी।
कियो वेदको व्यास परासर सुत गिरि सेवी॥
धरि सिर सबके पादकी, पावन पुण्य पराग अति।
भनूँ भागवत-भव्य भव-भयहर भाषा यथामति॥

छप्पय स्वतः बन गयी मानों किसी ने बता दी हो, इसके लिये कुछ भी प्रयास न करना पड़ा। विशेष काट छाँट भी न करनी पड़ी। ज्यों ज्यों उसे पढ़ते त्यों त्यों वह अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत हुई। अपने हाथ की बनी रोटी जली भुनी, कच्ची पक्की कैसी भी हो वह भी स्वादिष्ट

लगती है, क्योंकि उसमें अपनापन जो है। इसी प्रकार अपनी बनायी कविता चाहे, अशुद्ध अथवा नीरस ही क्यों न हो बड़ी अच्छी लगती है—

'निज कवित्त केहि लाग न नीका'

इस एक छप्पय लिखने से ही बड़ा साहस हुआ और ऐसी प्रेरणा हुई, कि प्रत्येक अध्यय के आदि अन्त में एक कविता रहा करे, आदि में छप्पय रहे अन्त में दोहा सोरठा कुछ भी रहे। ऐसे दो चार अध्याय लिखे एक अध्याय के अन्त में दोहा भी लिखा अन्त में निश्चय यही रहा कि आदि अन्त में छप्पय ही रहा करें। अब छप्पयों का क्रम आरम्भ हुआ। एक अध्याय लिख लेने के अनन्तर दो छप्पय लिखी जातीं, एक तो उस अध्याय के अन्त की और एक आगे के अध्याय की। जब आगे का अध्याय समाप्त हो जाता तो फिर दो लिखी जातीं। इस प्रकार अध्याय के आदि अन्त में छप्पय लिखी जाने लगीं। कुछ लिखने के अनन्तर केवल छप्पयों को ही पढ़ा गया, तो वे परस्पर में सम्बन्धि पायीं गयीं। केवल छप्पय ही छप्पय पढ़ते जाओ तो सम्पूर्ण कथा का क्रम लग जायगा। सम्पूर्ण अध्याय का सार उन दो छप्पयों में भली प्रकार आ जाता था। अब तक इसके लिये कुछ प्रयास नहीं किया गया था, उधर ध्यान भी नहीं दिया था। जब देखा यह तो एक स्वतन्त्र नया ग्रन्थ ही अपने आप बन रहा है, तो इधर ध्यान भी आकर्षित होने लगा और इस बात की सतर्कता बरती जाने लगी कि छप्पय सब क्रम बद्ध हों। इस प्रकार बिना प्रयास के स्वतः ही यह भाषा छन्दों में भागवत बनने लगी।

छप्पय ब्रज भाषा की विशिष्ट छन्द है, अन्य भाषाओं में भी छप्पय छन्द लिखी जाती हैं। चार पद रोला छन्द के दो

पद उल्लाला छंद के—इस प्रकार छै पद मिलने से छप्पय छन्द हो जाता है। रोला और उल्लाला ये दो छन्द पृथक् पृथक् भी लिखे जाते हैं दोनों मिलने पर छप्पय कहलाते हैं। ब्रज भाषा के अनेक कवियों ने छप्पय छन्दों में ही काव्य किया है। परम भगवत् भक्त श्रीनाभाजी की 'भक्त माल' छप्पय छन्दों में ही है। परम रसिक नन्ददास जी की रासपंचाध्यायी रोला छन्दों में है।

इनके अतिरिक्त श्रीभगवत्रसिक, सहचरीशरण तथा प्रायः सभी ब्रज के रसिकों ने इस छप्पय छन्द को अपनाया है। ब्रज रस की यह सिद्ध छन्द है और सभी राग रागनियों में यह उत्तमता के साथ गाई जा सकती है। भागवती कथा तो हिन्दी में लिखी जाने लगी और भागवत सार इन छप्पयों में ब्रज भाषा में लिखा जाने लगा। भाषा में तो समय समय पर परिवर्तन होता ही रहता है। इसी नियमानुसार प्राचीनब्रज-भाषा से इसमें कुछ भिन्नता स्वाभाविक ही है और आवश्यकता-नुसार, अन्य प्रान्तीय बोलियों के शब्द भी इसमें आ ही गये हैं।

छपाई की कथा

जब भागवती कथा के १५। २० अङ्क निकल गये और दशमस्कन्ध की लीलायें लिख गयीं, तब इच्छा हुई कि समस्त छप्पयों को संग्रह करके नित्य पाठ के लिए इसे पृथक् छपा दिया जाय, किन्तु यह कार्य था द्रव्यसाध्य। भागवती कथा का ही कार्य अत्यन्त संकोच से मन्थर गति से हो रहा है, यह कैसे हो। फिर सोचा—'जिनका काम है, वे स्वयं ही कुछ प्रबन्ध करेंगे। इससे सन्तोष करके बैठ गये। जीवन में भगवान् का अवलम्ब कितना भारी अवलम्ब है। जीव जितनी चिन्ता करता है, भगवान् को भूलकर ही करता है। जिसे

जितना ही अपने कर्तृत्वका अभिमान होगा उसे उतनी ही अधिक चिन्ता होगी। जो सब काम में भगवान का हाथ देखते हैं, वे बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी चिन्तित नहीं होते। हम जब भगवान् की महत्ता को बिसारकर अपने को ही कर्ता मान लेते हैं तभी हमें चिन्ता होती है। इसी लिये भगवान् हमें अभावका दिग्दर्शन कराके पुनः पुनः सङ्केत करते रहते हैं। यह उनकी परम अनुग्रह है। यदि वे हमें अभाव के दर्शन न करावें, तो हम श्रीमदान्ध होकर उन्हें भूल जायँ। इसीलिये जिन्हें अपनाते हैं उन्हें स्वयं ही निष्किञ्चन बना लेते हैं। भगवान् किस प्रकार छोटी छोटी बातों का भी स्वयं ध्यान रखते हैं, इसके जीवन में अनन्त अनुभव हैं, उन्हीं कृपाकी बातों का स्मरणकर करके तो हम जी रहे हैं, उनका विज्ञापन करना उनके महत्व को घटाना है, किन्तु भागवत चरित के सम्बन्ध में जो उन्होंने पग पगपर अपनी कृपा दिखायी है उसका तो विज्ञापन करना ही है, उसमें आत्मप्रशंसा हो पाप हो, पुण्य हो सबका फल उन्हीं के श्रीचरणों में समर्पित है।

हाँ, तो छप्पयों का संग्रह मिश्रजी करते गये। उसी समय एक व्यक्ति ने हमें ८१६ रिम कागद भेज दिया। वैसे ही स्वतः ही बिना किसी सूचना के इसे हमने भगवत् आज्ञा ही समझी। चार पाँच फरमे छाप डाले। कागद बड़ा सुन्दर था। दो फरमे सुन्दर छपे फिर कुछ संशोधन की भी ढील रही ३।४ फरमे अशुद्ध भी छप गये। कागद चुक गया। छपाई का काम बन्द हो गया और लगभग एक वर्ष बन्द पड़ा रहा। हमने सोच लिया अभी इसके प्रकाशन का समय नहीं आया।

जीव जब तक चिन्ता करता है तब तक भगवान् निश्चित होकर बैठे बैठे हँसते रहते हैं। जब जीव अपनी चिन्ता छोड़कर निश्चिन्त हो जाता है तब—भगवान् को चिन्ता व्यापती है। यह रॉड़ चिन्ता भगवान् को भी नहीं छोड़ती। अब आप जानते ही हैं अपना जीवन चरित्र छपाना तो सभी को अच्छा लगता है। "स्तोत्रं कस्य न रोचते" अपनी स्तुति किसे प्यारी नहीं लगती। श्रीकृष्ण को भी अपना चरित छपाने की घटपटी लगी वे किसी के सिर पर सवार हुए। उसने छापना आरम्भकर दिया। कहते हैं जिनके ऊपर सवार हुए उन्हें भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये। अब दर्शन दिये या न दिये इसे तो भगवान् जाने था वे जाने हम तो सुनी सुनाई बात कहते हैं। भगवान् के यहाँ कोई नियम विधि विधान तो है ही नहीं कि इतना जप करो इतना तप करो तो दर्शन हो ही जायेंगे। उन्हें दर्शन न देना हो लाखों वर्ष के जपतप से भी नहीं देते। देना हो तो एक गाली से रीझ जाते हैं। अस्तु यह विवेचन तो बड़ा है इस पर तो कभी फिर स्वतन्त्र विचार होगा, यहाँ तो मुझे भागवत चरितका संक्षिप्त इतिहास सुनाना है। कहने का सार यही कि भगवान् ने छपाई, कागद आदि का प्रबन्ध स्वतः ही कर दिया मुझे इसके लिये कुछ भी प्रयास न करना पड़ा। पुस्तक छप गयी। हमें कितना हर्ष हुआ इसे शब्दों में हम व्यक्त नहीं कर सकते।

अब तक ६०।७० पुस्तकें मेरे नाम से छप चुकी होंगी और अधिक भी हों, किन्तु जितनी प्रसन्नता इस "भागवतचरित" के छपने पर हुई उतनी स्यात् ही किसी पर हुई हो। हमें ऐसी अन्तः प्रेरणा हुई मानों यह श्रीमद्भागवत् का भाषा में पुनः अवतरण हुआ। इसलिये इस ग्रन्थ का

चहुमानपुरस्सर प्रतिष्ठानपुर लाया जाय; इसलिये इसके उपलक्ष में एक महोत्सव मनाया जाय। हाँ, महोत्सव मनाने के पूर्व एक और भी विचित्र दैवी घटना घटित हो गयी। उससे इस ग्रन्थ का माहात्म्य सभी को प्रकट हो गया। उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है। नयी विचारधारा के लोग तो इस पर विश्वास संभवतया न करें, किन्तु वे न करें जो घटना हुई है उसे तो बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

श्रीभागवतचरित सप्ताह श्रवण से प्रेतमुक्ति।

भागवतचरित अभी पूरा छपा नहीं था, किन्तु कम्पोज हो गया था। इसके अंतिमप्रूफ आ रहे थे, एक दिन नित्य नियमानुसार मैं त्रिवेणी के बीच में स्नान करके नौका में चढ़ रहा था, कि उसी समय दो लड़के मेरे पास आये। उनमें एक की अवस्था १८, २० की होगी दूसरे की २४, २५ की छोटा कुछ सबल लम्बा हृष्ट पुष्ट और नवशिक्षित प्रतीत होता था, बड़ा लड़का ठिंगना सरल पुराने विचार का था। वह एक सफेद कुर्ता सफेद टोपी और सफेद धोती पहिने था। कंठ में तुलसी की माला पड़ी थी, आँखें कुछ चढ़ी हुई थीं, मुख मंडल पर विषण्णता छायी थी, दोनों ने ही आकर मेरे पैर छूए।

मैंने अपने स्वभावानुसार हँसते हुए पूछा—"कहो, भैया! कैसे आये?"

उनमें से बड़ा बोला—"महाराज! हम आपके दर्शनों के लिये आये हैं।"

मैंने कहा—"तुम मुझे कैसे जानते हो, तुमने मेरा नाम किससे सुना है।"

उसने कहा—"महाराजा ! मैं आपका नाम बहुत दिन में सुनता हूँ, आपके लेख आपकी पुस्तकें भी पढ़ीं । बहुत दिनों से आपके दर्शनों की इच्छा थी, संयोग की बात अभी तक हो नहीं सके। इस समय एक प्रेतराज हमें आपके पास ले आये हैं।"

प्रेतराज का नाम सुनकर मैं चौंक पड़ा । प्रायः ऐसे लोग मेरे यहाँ अधिक आते हैं। कोई भगवान् के दर्शनों की या ऐसे ही भूत प्रेत की अलौकिक घटना सुनाता है, तो मैं सब काम छोड़कर उस बात को बड़े चाव से सुनता हूँ। कुछ लोग झूठी भी बातें सुनाते होंगे, कुछ सच्ची भी किन्तु जो अचिन्त्य भाव हैं उन्हें तर्क की कसौटी पर खरा खोटा नहीं बताया जा सकता । लोग बड़ी बड़ी विचित्र विचित्र बातें बताते हैं। हाँ, तो इनकी बातें सुनने को भी मैं बड़ा उत्सुक हुआ। मैंने पूजा पाठ बन्द कर दिया और कहा प्रेतराज तुम्हें यहाँ कैसे ले आया, यह सब वृतान्त मुझे सुनाओ।"

इस पर उसने कुछ वृतान्त मुझे वहाँ सुनाया कुछ आश्रम में आकर सुनाया, सबका सार मैं यहाँ पाठकों को बताता हूँ।

उसने बताया—मैनपुरी जिले में भदान नामक एक गाँव है डाकखाना भदान में ही है। हम जाति के सनाढ्य ब्राह्मण है । मेरा नाम रामसेवक शर्मा है । पिता का नाम पं० दर्शीलाल शर्मा है। हमारे पिता (पं० दर्शी लाल) पं० मदन-मोहनजी की गोदी गये । मदनमोहनजी की स्त्री का नाम गौरीदेवी था । उनके कोई संतान नहीं थी । १८ वर्ष की अवस्था में मदनमोहनजी का देहांत हुआ। उनकी सम्पत्ति के अधिकारी हमारे पिता हुए । हमारे पितामह पं० मदन

मोहन जी की अकाल मृत्यु हुई। किसी भी कारण से वे प्रेत हुए। पहिले पहिल वे हमारे माता के ऊपर आये। हमारे पिता (दर्शी लाल) भूत प्रेत आदि को नहीं मानते हैं, अतः उन्होंने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। कुछ काल के अनन्तर जब मेरी अवस्था १२ १४ वर्ष की थी एक दिन सहसा उन प्रेतराज (हमारे बाबा) का मेरे ऊपर आवेश हुआ। मैं अपने पिता का कभी नाम नहीं लेता था, किन्तु जब मुझ पर उन प्रेतराज का आवेश हो गया तो मैं अपने पिता का आधा नाम लेकर बोला—"तू मेरे उद्धार का उपाय कर नहीं मैं तेरा सर्वनाश कर दूँगा। मेरे निमित्त भागवत सप्ताह करा।" किन्तु हमारे पिता तो भूत प्रेत को मनाते ही नहीं थे। उन्होंने कह दिया—"मुझे इन बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं।"

अब तो उन प्रेतराज का समय समय पर आवेश होने लगा। उस समय मुझे शरीर का तनिक भी भान न रहता। जब आवेश उतर जाता तब शरीर की सुधि आती। उस समय मैंने क्या कहा इसका भी मुझे स्मरण नहीं रहता। कोई इसे मृगी बताते कोई हृदय की दुर्बलता, किन्तु मैं स्पष्ट जानता था कि यह प्रेत का आवेश है। इसी आवेश में एक बार मैं गङ्गा किनारे किनारे राजघाट नरौरा के पास नरवर पाठशाला में चला गया और वहाँ के अध्यक्ष पं० जीवन दत्त जी ब्रह्मचारीजी की सेवा में कुछ दिन रहा। मैंने अपनी दयनीय दशा उन्हें सुनायी और प्रेतराज की श्रीमद्भागवत के सप्ताह की आज्ञा सुनायी। सब सुनकर ब्रह्मचारीजी ने कहा—"यहीं भागवत का सप्ताह कराओ। प्रेत के निमित्त सप्ताह तो कराना ही चाहिये।" किन्तु ऐसा

हुआ कि सप्ताह हो ही नहीं सका, वहीं मुझे नरौरा ग्राम के श्री अग्निहोत्री जी महाराज के दर्शन हुए। अग्निहोत्री जी के दो पुत्र हैं। अमृत लाल शास्त्री बड़े और वाचस्पति छोटे। अमृत लाल का विवाह हो चुका था। वाचस्पति क्वारे थे। मेरी एक बहिन दीप शिखा देवी विवाह योग्य थी। संयोग की बात अग्निहोत्री जी से प्रार्थना की गयी उन्होंने हमारी बहिन का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और वाचस्पतिजी के साथ हमारी बहिन का सम्बन्ध हो गया। यह सब हो गया, किन्तु हम प्रेतराज के निमित्त सप्ताह न करा सके। अब तो प्रेत राज का आवेश मेरी बहिन दीप शिखा देवी पर भी वहाँ आने लगा और भाँति भाँति की हानि पहुँचाने लगा। अग्निहोत्री जी भी भूत प्रेत के विरोधी थे, उनका कहना था, कि हमारे यहाँ नित्य अग्निहोत्र होता है यहाँ भूत प्रेतों का क्या काम? हमारी बहिन के जेठ अमृत लाल की स्त्री पर भी आवेश होता और वे प्रेतराज भाँति भाँति की आज्ञा देते। वे बार बार भागवत सप्ताह कराने का आदेश देते किन्तु हमारे पिता किसी प्रकार उसे स्वीकार नहीं करते। हमारी आर्थिक हानि बहुत होने लगी। बहुत सा लेन देन था, वह नष्ट हो गया, चूड़ियों का कारखाना था वह भी समाप्त हो गया, खेती बारी नष्ट होने लगी लगभग ४०। ५० हजार की हानि हो गई और मैं तो पागलों की भाँति इधर उधर घूमता हूँ, जहाँ वे प्रेतराज ले जाते हैं, वहाँ जाता हूँ।

आज से दो दिन पहिले प्रेतराज का फिर मेरे ऊपर बड़े वेग से आवेश हुआ। उन्होंने मेरे पिता को सम्बोधन करके कहा—"दर्शी! हमने बड़े क्लेश उठाये हैं, तुम लोगों ने हमारे उद्धार का कोई उपाय नहीं किया। अब यदि तू कुछ

करता है, तो फर नहीं मैं इस लड़के को मार डालूँगा पीछे तू इसकी तेरहीं तो करेगा ही। ऐसे ही मेरे लिए कुछ कर दे। मुझे इस योनि में बड़ा कष्ट है।"

फिर इसके पश्चात् उन प्रेतराज ने अपना सब वृत्तान्त बताया कि मैं पूर्व जन्म में बड़ा पंडित था प्रयाग से ८ - १० कोश पर सोनापुर नामक मेरा गाँव था, हम दो भाई थे, मेरा नाम अरुणदेव शास्त्री और मेरे भाई का नाम शालिगराम था। मेरे दो लड़के और एक लड़की थी। एक लड़का तो तू (सेवकराम) है। दूसरा लड़का (नरवर के याज्ञिकजी का बड़ा लड़का सेवकराम की बहिन का जेठ) अमृत लाल था। और लड़की सेवकराम की बहिन है। मैंने बहुत धन पैदा किया, किन्तु कुछ भी सुकृत मुझसे नहीं हो सका तब मेरा जन्म मैंनपुरी के भदान गाँव में हुआ। मेरे पास धन तो बहुत था, किन्तु उससे मैंने कुछ पुण्य-कर्म नहीं किया। वहाँ मेरी अकाल मृत्यु हुई और मुझे यह प्रेत योनि प्राप्त हुई। इसमें मैं जलता रहता हूँ। अपने आप मैं कोई शुभ कर्म नहीं कर सकता। मेरे ऊपर बड़ा शासन रहता है। प्यास लगती है पानी नहीं पी सकता। हम परिवार वालों से ही आशा रखते हैं, वे कुछ हमारे लिये पुण्य करें तो मिल जाय, हमारा रूप बड़ा भयङ्कर है हम दूसरों का अनिष्ट तो कर ही सकते हैं। मैं कब से कह रहा हूँ, मेरे लिये भागवत सप्ताह करा दो। इससे मेरा उद्धार हो जायगा। तुम स्वयं नहीं करा सकते, तो मेरे साथ प्रयाग चलो। मैं अपने सप्ताह का सब प्रबन्ध करा लूँगा।"

उस लड़के सेवकराम ने मुझसे कहा—"सो, महाराज! वे प्रेतराज ही मुझे यहाँ आपके पास ले आये हैं। हमारे

पिता तो अब भी नहीं मानते थे। यह मेरा छोटा भाई है। आगरा कालेज में पढ़ता है इसने कहा—"मैं आपके साथ प्रयाग चलूँगा, सो यह मेरे साथ आया है। अब आप जैसी आज्ञा दें।"

प्रेत की कथा सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—"हमारे यहाँ तो वर्ष में कई सप्ताह हो जाते हैं, होते ही रहते हैं, तुम्हारे लिये भी करा देंगे। तुम कोई चिन्ता मत करो। हमारा भागवत चरित छप रहा है, उसकी कथा हम प्रेतराज को सुनवावेंगे और प्रातः मूल संहिता का पाठ करावेंगे।" इतना आश्वासन देकर उन दोनों को मैं आश्रम पर ले आया। यह मार्गशीर्ष के महीने की बात है और कृष्ण पक्ष की। निश्चय हुआ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में यहीं सप्ताह हो। प्रातःकाल मूल संहिता पाठ हो सायंकाल को भागवत-चरित की कथा हो।" ऐसा निश्चय होने पर वे दोनों भाई सप्ताह के लिये अपने परिवार वालों को बुलाने अपने गाँव चले गये।

प्रेत योनि पाप का परिणाम है। मनुष्य लोभवश पाप तो कर डालता है, किन्तु उसकी अन्तरात्मा उसे टोंचती रहती है। मरने पर जीवात्मा तो मरता नहीं। प्रेतयोनि होने पर संस्कार वे ही बने रहते हैं। उस समय सूक्ष्म देह होने से सूक्ष्म से सूक्ष्म वासनायें उभड़ पड़ती हैं और वे बड़ी पीड़ा देती हैं। मेरे पास सभी प्रकार के लोग आते हैं और अपने गुप्त से गुप्त पाप बताते हैं। अभी कल ही एक व्यक्ति आया उसने बताया—महाराज मेरा मन एक स्थान में फँस गया है। मुझे बड़ा कष्ट है मेरी इच्छा पूरी होगी या नहीं?" जब मैंने उसका परिचय पूछा तब उसने बताया मेरी वह एक सम्बन्धिनी है। मैंने उसे बहुत समझाया; अरे! वह तो तेरी

पुत्रीके सदृश है। उसने कहा—"तो आप मेरे मन को फेर दीजिये। जिससे उसका मुझे स्मरण न आवे।"

वह व्यक्ति अत्यन्त अधीर हो रहा था! विवाहित था भले घर का था। उसका शरीर मूर्तिमान वेदना बना हुआ था। उसे कोई शरीरिक कष्ट नहीं था, मानसिक विकार था उसी में घुला जा रहा था। इस समय तो उसमें इतनी सामर्थ्य है, कि बलात्कार भी कर सकता है। वही मरकर यदि प्रेत हो जाय, तो उसकी वासना तो इससे भी अधिक तीव्र होगी, किन्तु वह कुछ कर्म नहीं कर सकेगा। उस समय उसके परिवार वाले उसके निमित्त कुछ पुण्य करें तो वही काम आ सकता है। पुराणों में ऐसी भी बहुत कथाएँ हैं। बंगाल के सुप्रसिद्ध सन्त श्रीविजयकृष्णजी गोस्वामी के जीवनचरित्र में भी एक ऐसी ही कथा का उल्लेख मिलता है; वह इस प्रकार है।

गोस्वामीजी जब वृन्दावन में रहते थे तो प्रायः श्रीवृन्दावनजी की परीक्रमा किया करते थे। एक दिन वे परिक्रमा कर रहे थे, कि उन्हें अपने सम्मुख एक व्यक्ति माला झोली में हाथ डाले जप करता हुआ अपने आगे आगे दिखायी दिया। तनिक वे आगे बढ़े, कि वह नहीं दिखायी दिया। कुछ आगे बढ़कर फिर उसकी छाया दिखायी दी। अब तो वे समझ गये, कि यह कोई प्रेत योनिका व्यक्ति है। आगे चलकर उन्होंने उस पर मन्त्र पढ़कर जल छिड़का और पूछा—"भाई! तुम कौन हो?"

उसने कहा—"महाराज! मैं एक प्रेत हूँ।"

गोस्वामीजी ने पूछा—"भैया! तुम किस पाप के कारण प्रेत हुए?"

उसने कहा—"महाराज ! मैं अमुक मन्दिर में पुजारी था। ठाकुरजी के रुपये चुराकर मैंने अमुक स्थान में गाड़ दिये; इसी से मैं प्रेत हो गया।"

गोस्वामीजी ने कहा—"भैया ! तुम तो भगवन्नामका जप कर रहे हो, श्रीवृन्दावन धामकी परिक्रमा कर रहे हो। एक नाम से अनन्त पाप कट जाते हैं।"

उसने कहा—"महाराज ! थैली में हाथ डालकर जप करते रहना, परिक्रमा करना यह मेरा स्वभाव था। वह स्वभाव मेरा अब भी नहीं छूटा है, इन कामों ने मन को इतना स्पर्श नहीं किया, जितना भगवान् के धन चुराने के पाप ने मन को स्पर्श किया। यदि उस पाप का प्रायश्चित्त हो जाय, तो मेरी प्रेत योनि छूट जाय।"

गोस्वामीजी ने कहा—"भैया ! तुम इसका प्रायश्चित्त भी बताओ, जिससे तुम इस प्रेत योनि से छूट जाओ। मेरे करने योग्य होगा, तो मैं उसका प्रबन्ध करूँगा।"

उसने कहा—"महाराज ! अमुक स्थान पर मेरे रुपये रखे हैं। उन्हें निकलवाकर मेरे निमित्त एक श्रीमद्‌भागवत का सप्ताह करा दें, साधु ब्राह्मणों का भन्डारा करा दें, तो मैं प्रेत योनि से छूट जाऊँ।"

गोस्वामीजी ने अपने शिष्य सेवकों से कहकर उस धन से भन्डारा आदि करा दिया, वह प्रेत योनि से छूट गया।"

धनका उपयोग यह नहीं है, कि उसे जोड़ जोड़कर रखा जायँ। इस जन्म में भी सदा जोड़ने में रक्षा करने में कष्ट उठावें और मरकर सर्प होकर उस पर बैठें या प्रेत होकर उसी का चिन्तन करें। हमारी जन्म भूमि के पास में

एक जाटों का बहुत पुराने किले का खेड़ा था। जब हम बहुत छोटे थे, तो सुना करते थे कि दिवाली के दिन उस खेड़े के भीतर से माया चिल्लाती है—"जिसे मुझे लेना हो वह अपना जेठा पुत्र नीला साँड़ एक बोरी उड़द चढ़ा जाओ और मुझे ले जाओ। अपने जेठे पुत्र को और नीले साँड़ को कौन चढ़ावे, इसलिये कोई माया को लेता नहीं है। हमने तो माया की यह बात अपने कानों से सुनी नहीं, किन्तु बड़ों के मुख से ऐसा सुनते आये हैं। यह तो प्रत्यक्ष है, माया सबको नहीं मिलती। बिहार में गदर के नेता कुमारसिंह के यहाँ सुवर्ण मुद्राओं से भरे बहुत—से कलश थे पीछे लोगों ने उन्हें निकालना चाहा तो वे कलश बड़ी तेजी से वहाँ से भागे और वहाँ से कई मील की दूरी पर गङ्गाजी थीं उसमें आकर विलीन हो गये। इसी धन से जितना धर्म स्वयं कर ले। पीछे कौन करता है। वासना शेष रह जाती है वे नाना योनियों में कष्ट देती हैं।

हाँ तो मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में सेवकराम अपने माता पिता, बहिन बूआ बहनोई (वाचस्पति) और अमृतलाल के साथ सप्ताह कराने यहाँ आ गया। सब मिलाकर १० १५ आदमी होंगे। अमृतलाल शास्त्री जो खुरजे के सुप्रसिद्ध व्यापारी सूरजमल बाबूलाल जाटिया के यहाँ पूजा पाठ करते हैं और सेवकराम के बहनोई के बड़े भाई हैं और पूर्व जन्म में जो दोनों सगे भाई थे, उन्होंने ही सप्ताह बाँची। प्रातः काल पाठ करते। सयंकाल को भागवत चरित की कथा करते।

पहिले दिन सेवकराम की बहिन पर प्रेतराज का आवेश हुआ। उन्होंने बताया—"भैया! तुम बहुत अच्छी जगह

आ गये हो महाराजजी के यहाँ मेरा उद्धार हो जायगा। तुम ऐसे ही मुझे सुनाओ।"

सात दिन सप्ताह हुआ। पूर्णिमा के दिन अवभृत स्नान करने त्रिवेणीजी में गये, तो वहाँ त्रिवेणीजी के बीच में ही सेवकराम की माता के ऊपर आवेश हुआ और प्रेतराज ने कहा—"भैया ! तुम लोगों ने मेरा उद्धार कर दिया, मेरी प्रेत योनि से मुक्ति हो गई। अब मैं वैकुन्ठ को जाता हूँ।" यह कहकर वे चले गये।"

यहाँ इस कथा के कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि सर्वप्रथम (जब तक भगवात चरित पूरा छपा भी नहीं था। केवल प्रूफों से) एक प्रेतराज ने इसे सप्ताह क्रम से सुना और उसकी मुक्ति भी हुई बतायी जाती है। प्रयाग जिले का मानचित्र मँगाकर प्रयाग के दक्षिण के गाँव मैंने देखे उनमें सोनपुर या सोनापुर कोई गाँव नहीं मिला। हाँ आनापुर मिला। सम्भव है आनापुर हो आनापुर तो रियासत है और वह प्रायः संगमसे है पश्चिम ही। इस विषय में और कुछ विशेष जान पड़ा तो फिर उसकी सूचना दी जायगी।

हाँ, तो अब आगे का प्रसंग सुनिये। किस प्रकार "भागवत चरित" को बहुमान पुरस्सर प्रतिष्ठानपुर लाया गया।

पौष मास में यह पूर्णग्रन्थ छपकर तैयार हुआ। निश्चय यह हुआ कि माघ कृष्णा पंचमी रविवार को बड़ी धूमधाम से समारोह पूर्वक ग्रन्थ को लाया जाय और संकीर्तन-भवन में इसी निमित्त एक महीने तक 'श्रीभागवत चरित महोत्सव मनाया जाय

"श्रीभागवत—चरित महोत्सव"

उत्सव का नाम सुनते ही आश्रम में तथा नगर में एक प्रकार का अभूत पूर्व उत्साह फैल गया। निश्चय हुआ कि कम से कम सौ मोटरें माँगी जावें और पच्चीस बड़ी लारियाँ। लारियों में प्रयाग नगर की समस्त संकीर्तन मंडलियाँ रहें, उनमें ध्वनि पूरक यन्त्र (लाउडस्पीकर) लगे रहें। मोटरों में विशिष्ट विशिष्ट व्यक्ति बैठे रहे या शोभा के लिये खाली चलें शेष लोग संकीर्तन करते हुए त्रिवेणी तक सवारी को ले चलें। वहाँ सभा होकर भूसी में आकर उस दिन का समारोह समाप्त हो। इसके लिए एक समिति बना दी गयी। पंडित मूलचन्दजी मालवीय उसके अध्यक्ष हुए और लीडर प्रेस के प्रधान व्यवस्थापक श्री विन्दा प्रसाद जी ठाकुर प्रधान मन्त्री हुए। स्वरूपरानीपार्क (जीरोरोड) पर उद्घाटन समारोह रखा गया। निश्चय यह हुआ कि ब्रह्मावर्त (बिठुर के) सुप्रसिद्ध सन्त श्रीसरकार स्वामी (पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज के) कर कमलों से उद्घाटन कराया जाय।

माघ कृष्ण पंचमी रविवार (सं० २००७) को मध्याह्न के समय कानपुर से ५०। ६० भक्तों के साथ श्रीसरकार स्वामी पधारे। विशिष्ट विशिष्ट व्यक्तियों ने स्टेशन पर उनका स्वागत किया। सम्मान के सहित वे सभा मण्डप में लाये गये। अग्रवाल सेवा समिति के स्वयं सेवकों ने तथा विभिन्न विद्यालयों के छात्रों ने उनके सम्मानार्थ अभिवादन किया और वेद घोष के साथ उन्हें मञ्च पर लीलास्वरूपों के समीप बैठाया गया। उन्हीं के करकमलों द्वारा नवीन भागवत चरित का पूजन हुआ। जिस [illegible] वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर वेदपाठ कर रहे थे, उस [illegible]माकार रूप में दृष्टिगोचर होता था जनता की

अपार भीड़ थी। पूजन के अनन्तर सरकार स्वामी ने कुछ काल कीर्तन किया, फरि होने लगी सवारी की तैयारी।

सवारी

कितनी लारियाँ थीं, कितनी मोटरें थीं इसकी गणना करने का अवसर किसे था। श्रीगजाधर प्रसाद भार्गव, मावीयजी, रामकृष्णशास्त्रीजी, ठाकुर साहब तथा अनान्य महानुभाव लारियों में मण्डलियों को बिठा रहे थे। एक ओर लारियों का तांता लगा था, एक ओर दूर तक मोटरें ही मोटरें खड़ी थीं। एक मोटर पर श्रीभागवत चरित की सवारी थी। आगे आगे हम सब लोग संकीर्तन करते हुए चल रहे थे। पीछे लारियों में समस्त मंडलियाँ अपनी अपनी ध्वनि में संकीर्तन कर रही थीं। सम्पूर्ण शहर के नर नारी उमड़ पड़े थे। उस समय सर्वत्र शान्ति का वातावरण छा गया था। अटा, अटारियाँ, ओखा, मोखा, झरोखा, सभी में से नारियाँ निहार रही थीं। संकीर्तन की तुमुल ध्वनि वायु मण्डल में व्याप्त होकर ससस्त अशुभों का निराकरण कर रही थी। उस समय का दृश्य अभूतपूर्व था। सभी लोग कह रहे थे। इतना बड़ा धार्मिक जुलूस आज तक नहीं निकला। सड़क पर मीलों लम्बी मोटर लारियाँ तथा स्त्री पुरुषों की भीड़ ही भीड़ दिखायी देती थी। बड़े बड़े रईस उनकी स्त्रियाँ सब आनन्द में विभोर हुए, संकीर्तन के प्रवाह में बहे हुए पैदल ही चल रहे थे। इसके कुछ दिन पूर्व ही मेरा पैर टूट गया था, किन्तु मुझे पैर की सुधि ही नहीं थी। सर्वप्रथम इतना पैदल चला था। इस प्रकार नगर कीर्तन

होता हुआ संकीर्तन दल त्रिवेणी बाँध पर आया। वहां जैसा अपूर्व दृश्य हुआ उसे वर्णन करने की लेखनी में शक्ति नहीं। उसका अनुभव तो देखने से ही हो सकता था।

अपूर्व सम्मिलन

जब सवारी बाँध से नीचे उतरी तो खाक चौ बैरागी वैष्णव अपने झंडी निशानों को लेकर सवारी का स्वागत करने आये। अहा! वह कैसी अपूर्व छटा थी। सैकड़ों महात्मागण जटा बाँधे सम्पूर्ण शरीर पर भस्म लगाये, जय सियाराम, जय सियाराम का, सुललित कीर्तन करते हुए गाजे बाजे के साथ उधर से आये। इधर से नगर के समस्त नर नारी कीर्तन करते हुए पहुँचे। गङ्गा यमुना का-सा संगम हो गया। भरत मिलाप का दृश्य प्रत्यक्ष दिखायी देने लगा। मेरे नेत्रों में जलभर आया। भूमि में लोटकर झंडे निशान तथा समस्त सन्त मन्डली को साष्टांग प्रणाम किया। सम्पूर्ण मेला बटुर आया था। कुंभका-सा दृश्य हो गया। बिना ठेले कोई निकल ही नहीं सकता था। सन्तोंको आगे करके सवारी संगम की ओर बढ़ी। आगे चलकर देखा पन्डाल खचाखच भरा है अतः सबको साथ लेकर सीधे संगम गये। वहाँ माधव जी का पूजन किया। भागवत चरित संगमराज को अर्पण किया। लौट कर पन्डाल में आये। महामहोपाध्याय पं० उमेश मिश्र मालवीय जी स्वामी चक्रपाणीजी तथा भक्तमालीजी आदि के भाषण हुए। सभा समाप्त होनेपर सब झूसी आये इस प्रकार बड़े सम्मानके साथ हम मार्ग कृष्णपन्चमी के दिन श्री भागवत चरित को झूसी लाये।

पाक्षिक पारायण

माघ भर "श्रीभागवत चरित महोत्सव" मनाया गया। श्री सरकार स्वामी एक महीने संकीर्तन भवन में अपने कुछ शिष्यों तथा भक्तों के सहित विराजे। नित्य ही आप विनय पत्रिका की सरस सङ्गीतमय कथा कहते। उसी समय पं० कृष्णकुमारजी मिश्र ने बाजे तबले पर श्री भागवत चरित का पाक्षिक पारायण किया। जो सभी लोगों को अत्यन्त रुचिकर हुआ।

एकाह पारायण

कुछ बच्चियों ने मिलकर माघ की एकादशी के दिन भागवत चरित, का अखन्ड एकाह पाठ किया। एक दिन में पारी पारी से सभी ने उसे समाप्त किया। उसमें बीस घन्टे के लगभग लगे। अब वे प्रायः प्रत्येक एकादशी को अखन्ड एकाह पाठ करती हैं, जिसमें १८-१९ घन्टे लगते हैं।

श्रीत्रिवेंणी जी में सप्ताह पाठ

जब श्रीद्वारका जाने का संकल्प उठा और न जा सके तभी संकल्प किया था, कि त्रिवेंणीजी को श्री भागवत सप्ताह सुनाया जाय। जब भागवत चरित छपने लगा तब सोचा छप जानेपर भागवत चरित को भी त्रिवेंणीजी को सुनाना है। जब माघ में छप गया और भागवत चरित भी समाप्त हो गया, तब फाल्गुन शुक्लपक्ष में त्रिवेंणी को सुनाने का निश्चय हुआ। पहिले विचार यह था, कि जो सात दिन तक केवल जलपर रहकर त्रिवेंणीजी के बीच में सप्ताह सुने उसी- को सम्मिलित किया जाय, अन्य किसी को नहीं। इसकी

सूचना किसी को भी नहीं दी गयी और बहुत निजी रूप से सुनने का निश्चय हुआ। पीछे यह भी छूट देदी गयी, कि दिन भर कुछ न खाकर जो रात्रि में फलाहार पर रहें वे भी सुनें। पहिले दो दिन तो १०। १२ आदमी ही सम्मिलित हुए। बीच त्रिवैंणी में चौकियाँ लगाकर नौका के ऊपर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी से आरम्भ हुआ। प्रातःकाल पं० ब्रजकिशोरजी मिश्र संहिता करते और मध्याह्नोत्तर उनके बड़े भाई पं० कृष्णकुमार मिश्र बाजे तबलेपर 'श्रीभागवत चरित' का पाठ करते। शनैः शनैः लोगों को पता लगने लगा और अन्त के ३ – ४ दिन तो बड़ी भीड़ हो गयी। चतुर्दशी के दिन रात्रि को बारह बजे बिना किसी विघ्न बाधा के सप्ताह समाप्त हुआ। त्रिवैंणी के बीच में निराहार रहकर एकाग्र चित्त से सप्ताह सुनने में जो आनन्द आया उसे सुननेवाले ही जानते हैं। दूसरे उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। इस प्रकार श्री त्रिवैंणीजी ने भी श्रीभागवत चरित के सप्ताह को उल्लास के साथ श्रवण किया। श्रोताओंपर श्रीत्रिवैंणीजी ने कितनी कृपा प्रदर्शित की, किस प्रकार सात दिन अपनी अनुग्रह का वरद हस्त रखकर पालन पोषण अनुप्रीणन तथा लालन किया, ये सब कहने की बातें नहीं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ का एकाह, सप्ताह तथा पाक्षिक पाठ हुए। बहुत से लोग नित्य नियम से सप्ताह पाक्षिक तथा मासिक पाठ करने लगे हैं। इस प्रकार मेरी पुरानी इच्छा तो पूर्ण हुई अब इसे सर्व साधारण जनता अपनाती है। या नहीं, यह बात तो भविष्य के गर्भ में छिपी है,

इसे तो वे ही भगवान् जान सकते हैं, जिनका यह चरित है। मानवबुद्धि क्षुद्र है, सीमित है, वह तो थोड़े को बहुत समझ लेता है और बहुत को थोड़ा। भगवान् का दास जिसमें अपना हित समझता है, यदि उसमें उसका हित नहीं होता, तो भगवान् उसे वह वस्तु नहीं देते। जिसमें दास का हित और उसे वह अहितकर भी प्रतीत हो तो भगवान् उसे देते हैं। भगवान् अपने दासों की सदा सुधि रखते हैं। इसलिये हे प्रभो! मेरा जिसमें हित हो वही करें। मैं मान प्रतिष्ठा और नाम के चक्कर में फँसकर तुम्हें न भूल जाऊं। जो भी कर्म करूँ तुम्हारी प्रीति के लिये ही करूँ। भागवत चरित में जो भी मेरा अनुभाव हो उसे भी आप लेलें। मैं देना भी न चाहूँ तो बल-पूर्वक छीन लें। इस प्रकार यह भूमिका तो समाप्त हो गयी, किन्तु बिना एक चटपटी कहानी के इति करदूँ तो मेरे पाठक असन्तुष्ट होंगे, इसलिये एक कहानी कहकर इस भूमिका को समाप्त करूँगा।

बहुत पुरानी बात है अयोध्या नगरी में एक अम्बरीष नाम के राजा रहते थे। ये अम्बरीष एकादशीवाले राजा अम्बरीष से पृथक् थे। वे तो यमुना किनारे के राजा थे। ये अयोध्या के राजा थे। इनकी एक अत्यन्त ही सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था श्रीमती। उस समय संसार में श्रीमती के सौंदर्य की सर्वत्र ख्याति थी। एक दिन श्रीनारदजी और पर्वत मुनि अयोध्या के राजा के समीप आये। श्रीमती

के सौंदर्य को देखकर दोनों ही मुनि मन्त्रमुग्ध-से बन गये। दोनों की ही इच्छा उससे विवाह करने की हुई। शीघ्रता से नारद मुनि ने राजा से कहा—"राजन! आपकी यह कन्या जैसी ही गुणवती है, वैसी ही रूपवती है। इसके हस्त की रेखायें साक्षात् लक्ष्मी के सदृश हैं। आप इस कन्या का विवाह मेरे साथ कर दीजिये।"

राजा कुछ कहना ही चाहते थे, कि बीच में ही बात काटकर पर्वत मुनि बोले—"राजन्! आप पहिले मेरी भी बात सुनलें। सबसे पहिले मैंने आपकी कन्या को मन से वरण कर लिया था, अतः मैं इसका प्रथम अधिकारी हूँ, इसलिये मेरे साथ इसका विवाह कर दें।"

दोनों तेजस्वी तपस्वी मुनियों की बात सुनकर राजा बड़े असमञ्जस में पड़े। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"मुनियो, मैं आप दोनों का सेवक हूँ, कन्या मेरे पास एक ही है, आप याचना करने वाले दो हैं। दोनों ही मेरे पूज्य हैं। आप दोनों मिलकर निर्णय करलें, मैं किसे कन्या दूँ।"

इसपर दोनों मुनियों ने कहा—"राजन्! हम तो दोनों अर्थी हैं। हम दोनों ही इसपर तुले हुए हैं, कि यह कन्यारत्न हमें मिले। हम दोनों कैसे निर्णय कर सकते हैं। आप राजा हैं, आप ही हम-में से किसी को दे दें।"

राजा ने कहा—"अच्छा, मैं एक को दे दूँ तो आप दूसरे बुरा तो न मानेंगे?"

पर्वत मुनि ने कहा—"राजन! यदि तुमने नारद को अपनी कन्या दी, तो मैं अभी आपको घोर शाप दे दूँगा।"

इसपर नारदजी भी बोले—"महाराज! यदि आपने पर्वत को अपनी कन्या दी तो मैं भी आपको शाप दूँगा।"

राजा ने कहा—"तब महाराज ! मैं आपमें से किसी एक को कैसे कन्या दूँ ? हाँ, अच्छा एक बात है। मेरी कन्या युवती है उसे भले बुरे का विवेक है आप दोनों में से वह जिसे वरण करले उसी को मैं उसे दे दूँगा।"

इस बात पर दोनों मुनि सहमत हो गये। एक तिथि निश्चित हुई कि अमुक दिन कन्या जिसे वरण करले उसी के साथ उसका विवाह हो। इस निर्णय से ही प्रसन्न होकर चले गये।"

जब मनुष्य का किसी वस्तु में अत्यन्त अभिनिवेश हो जाता है। तो उसे प्राप्त करने के लिये वह उचित अनुचित सभी उपायों को करता है। वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। नारदजी ने सोचा—"कन्या ने यदि मुझे वरण न किया, तो कन्या से तो मैं वञ्चित हो ही जाऊँगा, संसार में मेरी बड़ी हँसी होगी। इसलिये ऐसा पक्का उपाय कर लेना चाहिये, कि पर्वत मुनि को कन्या वरण ही न करे विष्णु भगवान् सर्व समर्थ हैं। उनकी मेरे ऊपर कृपा भी बहुत है, उनसे यदि सहायता ले ली जाय, तब तो मेरी विजय निश्चित ही है।" यही सब सोचकर वे चुपचाप वैकुण्ठ की ओर चल दिये।

भगवान् विष्णु सबके साथ सभा में विराजमान थे। नारदजी ने जाकर लम्बी डन्डौत झुकाई।

नारदजी को देखते ही हँसते हुए भगवान् बोले—"आइये ! नारदजी ! आइये। कहिये कहाँ कहाँ से आये ? क्या समाचार हैं संसार के ? कोई नयी बात हो तो बताइये।"

नारदजी ने संकोच के स्वर में कहा—"नयी तो महाराज ! कुछ बात नहीं है। मैं आपके चरणों में एक निवेदन करना

चाहता हूँ ।"

भगवान् ने उल्लास के साथ कहा—"हाँ हाँ, कहिये, क्या बात है ? जो आपको कहना हो निःसंकोच कहिये ।"

नारदजी ने कहा महाराज गुप्त बात है तनिक एकान्त में पधारें तो निवेदन करूँ ।"

भगवान् ने कहा—"हम यहीं एकान्त किये देते हैं ।" यह कहकर लक्ष्मीजी को भीतर जाने को कह दिया और लोगों को बाहर जाने की आज्ञा दे दी । लक्ष्मीजी मुस्कराती हुईं कड़े छड़े और नूपुरों को झनझनाती हुईं छम्म छम्म करके भीतर घुस गयीं ।

एकान्त हो जाने पर नारदजी ने आदि से अन्त तक सब समाचार सुनाकर प्रार्थना की "भगवान् ! मैं चाहता यह हूँ, कि पर्वत मुनि का मुख आप बन्दर का कर दें ।" यह सुनकर भगवान् ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मुनिवर ! हम आपके हित का काम अवश्य करेंगे पर्वत मुनि का मुख बन्दर का अवश्य हो जायगा ।" यह सुनकर नारद मुनि प्रसन्न हुए चले गये ।

पर्वत मुनि को या तो किसी गुप्तचर से समाचार मिल गया या उनके मन में भी चटपटी लग रही थी, इसीलिये वे भी अपनी शिफारिस कराने वैकुंठ को चल दिये । एकान्त में जाकर उन्होंने भी भगवान् से सब बात कह दी और प्रार्थना की "आप नारदजी का मुख लंगूरका-सा बना दें ।" यह सुनकर हँसते हुए भगवान् ने कहा—"मुनिवर, जिसमें आपका कल्याण होगा, उसको हम अवश्य करेंगे, नारद का मुख लंगूरका-सा हो जायगा ।" यह सुनकर पर्वत मुनि भी प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रस्थान कर गये ।

नियत तिथि पर दोनों मुनि राजा के यहाँ पहुँचे। राज-सभा में दोनों जाकर टाठ बाठ से बैठे। सोलह शृंगार करके हाथ में जयमाल लेकर राजकुमारी आयी। राजा ने कहा—"बेटी! ये दोनों मुनीश्वर बैठे हैं। दोनों ही बड़े तेजस्वी तपस्वी हैं, तू इनमें से किसी एक को वरण कर ले। यह सुनकर कन्या आगे बढ़ी वह भयभीत होकर वहीं की वहीं खड़ी रह गयी।

राजा ने बार बार कहा—"बेटी! इन दोनों मुनियों में से एक को वरण कर ले।" तब कन्या ने लजाते हुए कहा—"पिताजी यहाँ मुनि कहाँ हैं। एक तो बन्दर है एक लंगूर है, इन दोनों के बीच में एक बड़े सुन्दर पुरुष बैठे हैं।"

इतना सुनते ही नारद और पर्वत दोनों ही समझ गये, भगवान् ने हमारे साथ छल किया। तुरन्त पर्वत मुनि बोले—"कुमारी! वह पुरुष कैसा है?"

राजकुमारी ने कहा—"वह पुरुष नीलवर्ण का है।"

पर्वत मुनि ने पूछा—"उसके हाथ में क्या है?"

कन्या ने कहा—"उनके कमल के समान हाथ में धनुष-बाण हैं। गले में सुन्दर घुटुटनों तक लटकती हुई माल पहिने हैं।"

राजा ने कहा—"तुझे यदि वे अच्छे लगें तो उन्हें ही तू माला पहिना दे।"

इतना सुनते ही लड़की ने उनके कंठ में माला डाल दी वे उस कन्या को लेकर चले गये। अब तो नारद और पर्वत दोनों ही मिल गये। दोनों निराश और पराजित हो चुके थे। दोनों ही भगवान् के पास क्रोध में भरकर पहुँचे और बोले—"क्यों महाराज! आपने हमारे साथ छल किया?"

भगवान् ने कहा—"कैसा छल ? मुनियो ! मैं तो कुछ जानता नहीं।"

पर्वत बोले—"आपने हम दोनों को तो बानर लंगूर बना दिया और हमारे बीच में बैठकर कन्या को उड़ा लाये।"

भगवान् ने कहा—"मुझे कन्या से क्या काम ? मेरे पास तो लक्ष्मी है ही। उस बीच के पुरुष के हाथ में क्या था ?"

पर्वत बोले—"उसके हाथ मे धनुष बाण था।"

भगवान् ने कहा—"तब बताइये मैं कैसे हो सकता हूँ, मेरा नाम तो चक्री है, मैं तो सब समय शंख, चक्र, गदा, और पद्म इनको धारण किये रहता हूँ। वह कोई और पुरुष होगा।"

यह सुनकर दोनों मुनि राजा को शाप देने चले, वहाँ तेज पुञ्ज होकर भगवान् ने राजा की भी रक्षा की कहानी बड़ी है। सारांश इतना ही है, कि भगवान अपने दासों का सदा हित ही करते रहते हैं, वे यदि किसी प्रलोभन में फँस भी जाते हैं, तो अपनी कृपा से श्रीहरि उन्हें निवारण कर देते हैं, मेरे मन में अपने महत्व को प्रकाशित करने, अपनी मान प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये अपना नाम करने के लिये ईर्ष्यावश दूसरों को नीचा दिखाने के भाव उदित हों, दूसरों की कीर्ति को लोभ करने की मनसे भी भावना हो तो हे भवभयहारी भगवान उसे जड़ मूल से मेट दो। "भागवत चरित" आपकी ही प्रेरणा और भावना का फल है। उसमें मेरा कभी अपनापन हो भी जाय, तो तुम जैसे चाहो, वैसे उसे मिटा देना। भला ! मेरे मन में अहंकार के वृक्ष को बहुत बढ़ने न देना अच्छा ! तुम्हारा चिन्तन करूँ तुम्हारे सम्बन्ध में लिखूँ और तुम्हारे ही चारु चरितों का गायन करूँ ऐसा

आशीर्वाद आप दें। ऐसा अनुग्रह इस अधम पर करें। अधिक क्या! शुभं भूयात्?

हे देवेश्वर! दयित! दयानिधि! दाता! दानी!
हैं सेवक प्रभुदत्त अल्प मति अवगुनखानी॥
धन, जन, वैभव, राज, विषय सुख नाथ! न चाहूँ!
पद पद्मनि की भक्ति जनम जनमनि में पाऊँ॥
का कहिकैं बिनती करूँ, अज्ञ अकिञ्चन दीन हूँ।
कृपा प्रतिज्ञा करि रह्यो, सब विधि साधन हीन हूँ॥

संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर
(प्रयाग)
चैत्र-कृ० ४।२००७ वि.

प्रभु

बुभुक्षित ग्वाल बाल

(६४१)

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः॥*
(श्री भा० १० स्क० २३ अ० १ श्लो०)

छप्पय

कहैं सखनि तैं श्याम वृक्ष ये अति उपकारी।
घाम, वायु, जल सहहिं करहिं परहित नित भारी॥
सबई इनकी वस्तु काम सबके ही आवें।
इनढिग अरथी आइ विमुख कबहूँ नहिं जावें॥
छाया ईंधन कोयला, पत्र, पुष्प फल मूल दल।
साधत सबके काज नित, जीवन इनको है सफल॥

जब तक देह है तब तक देह धर्म भी हैं अन्तर इतना ही है कि जो तदीय हैं प्रपन्न हैं अनन्य भक्त हैं शरणागत हैं आश्रित हैं। उनके सब काम श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ होते हैं। भक्ति मार्ग में पुरुषार्थ को इतना महत्व नहीं दिया गया है यदि कुछ पुरुषार्थ का

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भूखे ग्वाल बाल श्री रामकृष्ण के समीप आकर कहने लगे—"हे महापराक्रमी बलरामजी! हे दुष्टों को दलन करने वाले कृष्ण! यह भूख हमें बड़ी बाधा पहुँचा रही है, इसको आप दोनों मिलकर शान्त करें।"

अर्थ है तो यही कि सर्वात्म भाव से हम श्रीहरि को ही अपना सर्वस्व समझें। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। भगवद्भक्त को भूख, प्यास, सरदी, गरमी आधि व्याधि तथा और भी किसी प्रकार की चिन्ता होती है, तो उसे भगवान के ही सम्मुख निवेदन कर देता है। जाड़ा तो संसारी लोगों को भी लगता है भक्त को भी लगता है। संसारी लोग इसके लिये रात दिन सोचते हैं, उद्योग करते हैं, रजाई या कम्बल प्राप्त होने पर सबसे कहते हैं—"इसे मैंने बड़े परिश्रम से बनवाया, इस प्रकार मुझे इसके लिये प्रयत्न करना पड़ा दूसरा तो कोई कर ही नहीं सकता।" भक्त को जाड़ा लगा, उसने भगवान् से कह दिया—"तुरन्त कहीं से वस्त्र आ गया, उसे प्रभु प्रसादी समझ कर बारम्बार सिर पर चढ़ाया, भगवान् की कृपालुता को स्मरण करके शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रों से अश्रु बहने लगे। यदि नहीं आया, तो मनमें सन्तोष कर लिया—"प्रभु मुझे जाड़े में ठिठुराने में ही मेरा हित समझते हैं, यदि मेरा हित न समझते, तो उनके यहाँ कम्बल रजाइयों की तो कुछ कमी है ही नहीं। वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के नायक हैं। उनसे मेरी कोई शत्रुता हो सो भी बात नहीं वे मेरे प्रिय से भी प्रिय हैं। मेरे ही क्या सम्पूर्ण भूतों के वे सुहृद हैं। उनको मेरी आवश्यकता का पता न हो सो भी बात नहीं वे सर्वान्तर्यामी हैं। वे मेरा अनिष्ट करना चाहते हों सो भी बात नहीं। वे तो मंगलमय हैं, कल्याणों के निधान शंकर हैं, सुख स्वरूप हैं, सबके सगे सम्बन्धी हैं।

जीव का एक मात्र कर्तव्य है, अपनी सब बातें भगवान से निष्कपट होकर भोले बालक की भाँति कह दे। और वे जो कहें उसे करे, उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहे। उनसे मिलने को छट-पटाता रहे। अन्त में उन्हें अपनाना तो होगा ही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गजपालाओं को वर देकर भग-

वारी अपने सखाओं के सहित गोष्ठ में आये गौओं को खोलकर बलदेव और सखाओं से घिरे हुए वृन्दावनसे दूर निकल गये। वन में जाकर भगवान् ने देखा सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है, प्रकृति स्तब्ध है। वृक्षों की शाखाओं पर बैठे पक्षी गण कलरव कर रहे हैं, कोई आकाश में उड़ रहे हैं, कोई भूमि पर बैठकर कण चुग रहे हैं, कोई वृक्षों पर लगे फलों को कुतर रहे हैं। भ्रमर इधर-उधर मधु के लोभ से पुष्पों को झकझोर रहे हैं, उनके मुख को नत करके मत्त होकर रस का पानकर रहे हैं। कमल खिलकर हिलकर परस्पर में मिलकर कुछ मन्त्रणा से कर रहे हैं, अथवा भ्रमरों का तिरस्कार कर रहे हैं। उन्हे मधुपान करने को मना कर रहे हैं। किन्तु ये ढीठ नायक की भाँति उनके निषेध की ओर ध्यान न देकर उनसे लिपट जाते हैं। अपने स्वार्थ साधन में लग जाते हैं। भगवान् ने देखा स्थान स्थान पर सघन कुन्ज निकुन्ज बनी हुई हैं लतायें वृक्षों से लिपटी हुई फूल रही हैं। मानों प्रिय आलिंगन से प्रसन्न होकर खिल रही हैं। सघन निकुन्ज में फूली हुई मालती, माधवी, मल्लिका, विष्णुकान्ता, विधारा तथा अन्याय लताओं के पुष्पों की सुखद सुगन्धि चारों ओर फैल रही है। उनकी शीतल छाया बड़ी ही आनन्द दायिनी है। भगवान् ने देखा बहुत से वृक्षों में नवीन कोमल कोमल पत्ते निकल रहे हैं। उनके पुराने पत्ते वृद्ध होकर जीर्ण शीर्ण बनकर स्वतः ही भूमि पर गिर पड़े हैं। उन गिरे हुए पुराने शुष्क पत्तों को भड़भूजे भाड़-में जलाने के लिये एकत्रितकर रहे हैं। बहुत से वृक्षों पर सुन्दर सुन्दर खिले हुए पुष्प लगे हैं। उन पुष्पों के मधु को भौरें पी रहे हैं। माली गण उन्हें माला बनानेके निमित तोड़ रहें हैं। बहुत-सी व्रज बालाएँ पूजा के लिये उन्हें एकत्रित कर रही हैं। पारिजात के पुष्पों से भूमि ढक-सी गई है। उनकी डंडी तो लाल वर्ण की है।

और खिली हुई पंखुड़ियाँ सफेद हैं। इससे उनकी शोभा अनुपम है।

बहुत से वृक्ष फलों के भार से नत हैं। उनके फलों को पक्षी खा रहे हैं। जंगली काले भील उन्हें एकत्रित करके अपनी आजीविका चलाने को ले जा रहे हैं। फलोंपर ही निर्वाह करने वाले ऋषि मुनि पक्के पक्के फलों को संग्रहकर रहे हैं। भगवान् ने बड़े बड़े वट के पीपल के सघन तथा प्राचीन पादप देखे। जिनकी छाया में सहस्रों मनुष्य बैठ सकें। पानी पड़ने पर भी जिनके नीचे भीग न सकें। जिनकी छाया में जंगली जीव तथा पथिक आकर विश्राम करते हैं। बहुत से ऋषि छोटे छोटे वृक्षों को खोदकर उनमें से कन्दमूल निकाल रहे हैं। कुछ रंग बनाने वाले तथा ओषधि निर्माण करने वाले वृक्षों की छालों को उतार उतारकर एकत्रितकर रहे हैं। बहुत से ब्रजवासी सूखे-सूखे वृक्षों को काट काटकर भोजन बनाने तथा अन्यान्य कार्य करने को लिये जा रहे हैं। कुछ लोग गीले ही वृक्षों को काट रहे हैं। कुछ धूप बेचने वाले अगर, तगर, छार छबीला आदि छोटे छोटे वृक्षों को काट कूटकर धूप बना रहे हैं। कुछ वृक्षों से गोंद ही एकत्रितकर रहे हैं। कुछ मूर्ख वृक्षों को जलाकर उनके कोयले बना रहे हैं। कुछ पुरानी राख को खाद बनाकर खेतों में डालने को लिये जा रहे हैं। कुछ स्त्री पुरुष छोटे छोटे अंकुरों को तोड़कर साग बनाने के लिये ही ले जा रहे हैं।"

इन सब दृश्यों को देख कर दामोदर अपने सभी सखाओं से प्रेमपूर्वक उनका नाम ले लेकर बोले—"हे स्तोक कृष्ण! हे भैया! देखो! ये वृक्ष कैसे तपस्वी परोपकारी साधु और सज्जन हैं। मैं तो समझता हूँ, संसार में इन्हीं का जीवन धन्य है।

स्तोककृष्ण ने कहा—"कनुआ भैया! तू इन तम प्रधान अचर वृक्ष को तपस्वी क्यों कहता है?"

भगवान् बोले—"अरे, भैया ! अचर होने से ही कोई बुरा थोड़े ही होता है। देखो ये सदा एक पैर से खड़े रहते हैं। धूप हो, वर्षा हो, जाड़ा हो, चाहे जो ऋतु हो सबको नंगे होकर अपने सिरपर सहते हैं। वानप्रस्थी तपस्वी को वायु, वर्षा, तथा धूप आदि को सहन करना इसी तपस्या का तो विधान है, ये इन बातों को बिना सिखाये, जन्म से ही अपने आप करते हैं, अतः ये जन्मजात तपस्वी हैं।"

इसपर पुनः स्तोककृष्ण ने पूछा—"अच्छा ! तू इन्हें साधु सन्त परोपकारी क्यों कहता है। ये तो व्याख्यान देने परोपकार करने कहीं जाते ही नहीं।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भैया ! जाने से या बोलने से ही परोपकार होता हो सो बात नहीं। परोपकार तो मनुष्य जहाँ भी रहे वहीं से कर सकता है। जो परकार्यों को सदा साधता रहे उसे साधु कहते हैं। परोपकार ही उसका व्रत है, उसकी समस्त चेष्टायें दूसरों के उपकार के ही निमित्त होती हैं। देखो, ये वृक्ष अपने लिये कुछ भी संग्रह नहीं करते। इनकी सब वस्तुएँ दूसरों के ही काम आती हैं। ये स्वतः बरसे हुए वर्षा के जल को पीते हैं। सड़ी गली दुर्गन्धियुक्त वस्तुओं को अपनी जड़ों से खाकर शरीर को बनाये रहते हैं। और निरन्तर उपकार में ही रत रहते हैं। इनकी एक भी ऐसी वस्तु नहीं जो किसी न किसी के काम में न आती हो।"

यह सुनकर अंशुनामक गोपबोला—"अच्छा, भैया ! इन वृक्षों के जो सूखे पत्ते अपने आप झड़ जाते हैं। ये किसी काम में आते हैं भला ?

भगवान् बोले—"अरे ! तुम इतना भी
ये सूखे पत्ते तो बहुत काम देते हैं। सड़ाकर इनकी
है। भड़भूजे इनसे चबैना भूनते हैं। जिसे

निर्धन अपने दिन काटते हैं। बहुत से पत्ते सूखकर ओषधि के काम आते हैं। हरे पत्तों को बकरी भेड़ भैंसें, गौ आदि पशु चरते हैं। इन सूखे पत्तों के कागद बनते हैं। कुटी छाने के काम में आते हैं, छप्पर बनते हैं। हरे सूखे पत्तों से बहुत काम निकलते हैं। भूसा, घास आदि को सुखाकर रख लेते हैं। पशु खाते हैं।"

इसपर श्रीदामा बोला—"भैया ! तू बात तो बड़ी पते की कह रहा है। हम देखते हैं, वृक्षों की एक भी वस्तु ऐसी नहीं जो काम में न आवे। इनके फल फूलों का भी बड़ा उपयोग है।"

भगवान् कहा—"यह भी कुछ पूछने की बात है। फूल देवताओं के पूजन के काम में आते हैं। उनकी मालायें बनती हैं। देवताओं के राजाओं के तथा प्राण प्रियाओं के कन्ठ उन मालाओं से सुशोभित होते हैं। फूलों की शैया बनती है, सुकुमारी कामिनियाँ इनके विविध आभूषण बनाकर शरीरों को सजाती हैं। महुए आदि के बहुत से फूल खाये जाते हैं, गोभी आदि के बहुत से फूलों के साग बनते हैं। बनपसा आदि बहुत से फूल ओषधि के काम में आते हैं। इस प्रकार फल भी खाने के काम में आवे हैं। बनवासी तो वन के फलों पर ही निर्वाह करते हैं। फलों का साग बनता है। अचार, मुरब्बे, बनते हैं। सुखाकर कच्चे पक्के सभी प्रकार के ओषधियों के काम में आते हैं। इनकी कौन-सी वस्तु ऐसी है जो काम में न आती हो।

इसपर अर्जुन नामक सखा बोला—"भैया ! कुछ वृक्षों की वस्तुएँ तो अवश्य ही मनुष्यों के बहुत उपयोग में आती हैं। और कुछ तो वैसे ही भूमि को घेरे खड़े रहते हैं। अब देखो, बट है, पीपर है; पाकर है, इनपर फूल तो लगते नहीं। फल भी बहुत छोटे छोटे होते हैं, जो मनुष्यों के किसी काम के नहीं। इनसे तो ऐसा कुछ मनुष्यों को विशेष लाभ होता नहीं।"

यह सुन कर भगवान् बोले—"ना, भैया! यह बात नहीं। ऐसा कोई भी वृक्ष न होगा, जिससे मनुष्यों का प्राणिमात्र का कुछ न कुछ काम न निकलता हो। इन अश्वत्थ और वट आदि वृक्षों की तो वनस्पति संज्ञा है, इनके फलों को पक्षी खाते हैं, इनके पंचपल्लव देव पूजनादि काम में आते हैं। इनके दूध से अनेक गुणकारी ओषधियों का निर्माण होता है। हाथी आदि बड़े बड़े जीव इनके ही पत्तों से जीते हैं। इनकी छाया इतनी सघन होती है, कि श्रमित पाथिक इनके नीचे बैठ कर विश्राम करते हैं। ऋषि मुनि इनके आश्रम में ही जप, तप करते हैं। कैसा भी वृक्ष हो उसकी छाया से तो सभी को सुख होगा।"

इसपर विशाल नामक सखा बोला—"बहुत से सूखे वृक्ष भी तो खड़े रहते हैं, सूखे वृक्षों की तो छाया नहीं होती।"

भगवान् बोले—"छाया न भी हो तो भी सूखे वृक्षों से संसार का कितना काम निकलता है। सूखी लकड़ी न हो, तो भोजन किससे बने, जाड़े में जलाकर किससे शीत निवारण करें। तुम्हारी लकुटी वंशी सब सूखी लकड़ियों की ही तो हैं। घर सूखी लकड़ियों से ही बनते हैं। हर, फावड़े, खाट, कुल्हाड़ी, पेटी, नौका कहाँ तक कहें विविध भाँति की आवश्यक वस्तुएँ वृक्ष की सूखी लकड़ियों से ही बनती हैं। इनके वल्कलों को लोग पहिनते हैं, भोजपत्र की पत्तल बनाकर उन पर खाते हैं। विविध भाँति के रंग वल्कलों से निकलते हैं। रस्सियाँ बनाई जाती हैं सुखाकर धूप आदि धूनी देने की वस्तुएँ बनती हैं।"

यह सुनकर तेजस्वी देवप्रस्थ बोला—"भैया! तुम्हारा कहना यथार्थ है, वृक्षों की कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। सूखने पर ईंधन का काम देते हैं। अपने आपको जलाकर भी प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं।"

भगवान् बोले—"सूखकर ही काम में नहीं आते। जलकर भी बड़े काम के बन जाते हैं। कहावत है :—"जीता हाथी लाख का, मरा हुआ सवा लाखका।" लकड़ियों को जला दो उनके कोयले कर दो, तो कोयले लकड़ियों से अधिक मूल्यवान् होंगे। भस्म होने पर भी निरर्थक न जायगीं। उससे भी खाद आदि अनेक वस्तुएँ बन जायँगी।"

यह सुनकर वरूथ नामक सखा बोला—"पेड़ों में से जो रस चूता है वह भी काम में आता है। सींकें भी काम में आती हैं। इनका तो रोग भी जनता के लिये हितकर है।"

भगवान् बोले—"स्त्रियों का मासिक स्राव, पानी के बुलबुले, ऊसर भूमि और वृक्षों का गोंद ये चार ब्रह्म-हत्या के चिन्ह हैं। ये तीन वस्तुएँ तो चाहे किसी काम न आवें किन्तु वृक्षों की ब्रह्म-हत्या भी बड़े काम की होती है। सब वस्तुएँ गोंद से चिपकाई जाती हैं। राल गोंद ही है जिसकी धूप बनती है। बहरोजा गोंद है जो सारंगी के तारों को ठीक करता है। हींग गोंद ही है जिससे दाल साग आदि पदार्थ छौंके जाते हैं।"

भगवान् कह रहे हैं—"भाइयो! कहाँ तक बतावें इन वृक्षों के अंकुर से लेकर बीज तक सभी परोपकार में ही काम आते हैं। ये वृक्ष अपने फलों को स्वयं नहीं खाते, ईंट मारने वाले को भी फल देते हैं। काटने वाले का भी उपकार करते हैं। इनसे कोई प्यार करे या द्वेष ये सबसे समान बर्ताव करते हैं। सबकी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। चाहिये भी यही, संसार में देहधारियों के बीच में जन्म लेने पर देह वाले के देह की सफलता इसी में है, कि वह अपने प्राणों से, धन से, बुद्धि से, तथा वाणी से सदा श्रेय का ही आचरण करता रहे। सबका जितना हो सके भला करता रहे। कभी किसी का मनसे भी अनिष्ट न चाहे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् वृक्षों की ग्वाल, बालों से बड़ाई करते हुए, वन में विचरण कर रहे थे। वे अपनी कृपा भरी दृष्टि से वृक्षों के नव पल्लवों को, गुच्छों को डालियों पर लदे हुए फलों को, सुन्दर खिले हुए फूलों को पत्तों को देखते जाते थे। किसी को अपने करकमलों से छू लेते। किसी को तोड़ लेते, किसी को सूंघते, किसी को खाते हुए आगे बढ़ रहे थे। जो शाखायें पत्र पुष्प और फलों के भार से झुकी हुई थीं जो अन्य बहुत-सी शाखाओं से सटकर सघन निकुञ्ज के रूप में बन गई थीं उनके बीच में होकर श्यामसुन्दर सखाओं के साथ जा रहे थे। वे उन कुंज निकुञ्जों में होते हुए यमुना तटपर आये।

यमुना तटपर आकर मध्यान्ह काल हो गया था। उस दिन घर से कलेऊ करके भी नहीं चले थे। बातों ही बातों में भटकते हुए बहुत दूर निकल आये थे अतः सब चलते चलते थक गये। छाक देने वाली गोपियों ने समझा दूसरे वन में होंगे, अतः वे भोजन लेकर दूसरे वन में चली गई थीं। गौएँ प्यासी थीं गोप भी भूख प्यास के कारण व्याकुल हो रहे थे। सब ने गौओं को यमुनाजी का स्वादिष्ट (शीतल) स्वच्छ तथा अति मधुर जल पिलाया। स्वयं भी सब ने घुसकर हाथ, पैर मुख धोये और पेट भर के जल पीया।

जल पिलाकर गौओं को चरने छोड़ दिया। गौएँ स्वच्छन्दता पूर्वक यमुनाजी के तटवर्ती वन में हरी हरी घास चरने लगीं। गोपों के पेट में भूख के कारण चूहे कुदकने लगे। खाली पेट पानी पी लेने से भूख और भी भड़क उठी। छाक लेकर अभी गोपिकायें आई नहीं थीं आवें कैसे वे तो दूसरे वन में भटक रहीं थीं। गोपों ने कुछ देर तो भूख को सहा किन्तु जब असह्य हो गई, तब वे भगवान के पास जाकर बोले—"भैया, कनुआ ! जैसे ये वृक्ष परोपकारी हैं। वैसे ही भैया तू भी बड़ा परोपकारी

है। ये बलदाऊ भी बड़े परोपकारी हैं। भैया तुम लोगों ने अघासुर, वकासुर, धेनुकासुर, व्योमासुर, प्रलम्बासुर तथा और भी अनेकों असुरों को मारकर ब्रज का बड़ा उपकार किया। हमने यह भी सुना है जब तू छोटा था तो एक जलमुही कोई पूतना राक्षसी आई थी उसे भी तैंने मार दिया किन्तु भैया! एक उपकार तैंने नहीं किया। यदि उसे भी कर देता तो संसार का बेड़ा पार हो जाता, सबके दुख दूर हो जाते।"

भगवान् ने कहा—"वह कौन-सा उपकार है। सुनें भी तो सही।"

गोप बोले—"भैया! इस रांड़ भूख को तू और मार देता तो सब झंझट ही दूर हो जाते। इस रांड़ ने संसार को बड़ा दुखी कर रखा है। इसी के पीछे लोग मारे मारे फिर रहे हैं। समुद्र को पार करके जाते हैं। पर्वतों में भटकते फिरते हैं। प्राणों का प्रण लगाकर व्यापार, चोरी तथा अन्यान्य साहस के काम करते हैं। इस राक्षसी को तू और पछाड़ दे।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे तुम अपने मनकी बात बताओ ऐसी लम्बी चौड़ी भूमिका क्यों बाँध रहे हो?"

गोपों ने कहा—"अब भैया! क्या कहें तू संकेत में ही समझले। पेट में चूहे कुदुक, फुदुक रहे हैं। आँतें मर्र मर्र मर्र कर रही हैं। कुछ पेट पूजा का डौल डाल होना चाहिये।"

भगवान् हँसकर बोले—"जाओ, सारेओ! तुम जन्म के भूखे ही रहे। यहाँ वन में क्या रखा है। वृन्दावन से तो हम कई कोश दूर हैं। यह तो मधुवन है। यहाँ खाने पीने का ढंग कहाँ यमुना जल पान करो डंडपेलो बहुत भूख हो तो वृक्षों के फल तोड़ कर खाओ।"

गोप बोले—"अरे, भैया! अब तू भी ऐसी निराशा की बातें करने लगा। यहाँ फल कहाँ हैं। टेंटी हैं कच्चे बेल हैं, झरबेरियाँ

के बेर हैं। इन कड़वे कच्चे कसैले फलों से पेट थोड़े ही भरेगा इन फलों को तो शरीर को, जलाने वाले तपस्वी खायँ हम तो वैष्णव हैं। हमें तो प्रभु की प्रसादी कुरकुरी मुरमुरी, लुच लुची सुन्दर सुन्दर स्वादिष्ट वस्तुएँ चाहिए। आज तो भैया! कुछ माल उड़े।

भगवान् तो आज भुलावा देकर लाये ही इसी लिये थे, उन्हें तो आज अपनी परम भक्ता मथुरा निवासिनी विप्र पत्नियों पर कृपा करनी थी। अतः इधर उधर देखकर बोले—"यमुना किनारे यह धूँआ किस बात का उठ रहा है। देखना कोई भैया!"

कई लड़के पेड़ों पर चढ़ गये और वे धूएँ की ओर देखकर वहीं से बोले—"भैया! स्वाहा स्वाहा हो रही है। ऐसा लगता है कोई बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है।"

गोप यह कह ही रहे थे, कि एक पथिक उधर से निकला। भगवान् ने उससे पूछा—"भैया! यह धुँआ किस बात का उठ रहा है। उसने बताया—"ब्रजराजकुमार! यहाँ से कुछ ही दूरी पर बहुत से वेदपाठी ब्राह्मणगण स्वर्ग की कामना से एक बड़ा भारी अङ्गिरस नामक यज्ञ कर रहे हैं?"

तब भगवान् ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए गोपों से कहा—"देखो भाई! यदि तुम्हें बहुत भूख लग रही है, तो यज्ञशाला में ब्राह्मणों के पास चले जाओ और भोजन के लिये कुछ माँग लाओ।"

गोपों ने कहा—"अरे कनुआ भैया! हम लोग अहीर की जाति, हमारे बाप दादों ने भी कभी भीख नहीं माँगी, हमसे भीख क्यों मँगवाता है?"

हँसकर भगवान् बोले—"भैया! भूख बुरी वस्तु होती है। भूख में सब कुछ करना पड़ता है, तुम संकोच मत करो।"

गोप बोले—"अरे, भैया! संकोच की क्या बात है, जब तू कहता है, तो सब कुछ करेंगे। तेरे कहने से तो हम कूआ में भी कूद पड़ेंगे, किन्तु भैया! हम गोपों को यज्ञशाला में कुछ देगा कौन ? हमें तो वे भीतर भी न घुसने देंगे।"

भगवान् बोले—"भीतर घुसने का काम क्या है बाहर से ही माँग लेना। तुम्हें स्वयं माँगने में संकोच हो तो बड़े भैया बलदाऊ जी का नाम ले लेना। मेरा नाम लेना, कहना उन्होंने हमें भेजा है। वहाँ जो भी दाल, भात, रोटी, कढ़ी, साग हो वही ले आना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्‌की आज्ञा पाकर वे भूख से व्याकुल हुए गोप ब्राह्मणों से भोजन माँगने के लिये यज्ञशाला की ओर चले।"

छप्पय

गोप कहें सब सत्य बृद्ध सम तू उपकारी।
भैया ! जैसे बने मेंटि तू बिपति हमारी॥
आज लगी अति भूख छाक अब तक नहिं आई।
सुनि बालनिके बचन बिहँसि बोले बलभाई॥
सत्र आङ्गिरस करहिं द्विज, जाओ मखशाला तुरत।
करो याचना अन्नकी, सब विनम्र ह्वै कें प्रनत॥

विप्र पत्नियोंसे अन्नकी याचना

(६४२)

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥
गाश्चारयन् स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० २३ अ० १६, १७ श्लो०)

छप्पय

हरि आयसु सब पाइ गये विप्रनि ढिँग बालक ।
कहैं सुनहु द्विज निकट कृष्ण आये पशु पालक ॥
होहि अन्न कछु देहु खाइ ते भूख बुझावें ।
यज्ञ शेष चरु पाइ ग्वाल सबतुमहिँ सरावें ॥
करी न नाहीं नहिँ दयो, मौनी सब द्विज बनि गये ।
लौटि सखनि हरि तें कही, नहिं निराश नटवर भये ॥

जिसका हम निरन्तर चिन्तन करते हैं, उसके आने का कोई सम्वाद देता है, तो हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। उसके

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपोंने जाकर विप्रपत्नियोंसे कहा "हे विप्रपत्नियो ! हम सब तुम्हें पैलगी करते हैं ! आप हमारी बात सुनिये यहाँसे कुछ ही दूर पर श्रीकृष्ण गौओंके पीछे विचर रहे हैं; उन्होंने

सम्बन्ध की कोई कथा कहता है, तो कान कृतार्थ हो जाते हैं वे उत्सुक होकर उसी की चर्चा सुनना चाहते हैं, नेत्र उसके दर्शनों के लिये छटपटाने लगते हैं। अङ्ग उनके सुखद स्पर्श के लिये लालायित हो उठता है। प्रेम में पदे पदे गोपन होता है, बात ऐसे सामान्य ढँग से कही जाती है कि सर्व साधारण लोग तो उसे व्यापक समझते हैं, किन्तु वह होती है उनके प्रति ही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् को कृपा तो करनी थी उन यज्ञ करने वाले विप्रों की पत्नियों पर किन्तु सीधे कैसे कहते। यहाँ बलदेवजी भी थे और भी गोप थे, एक साथ पहिले कह देते कि तुम स्त्रियों के पास चले जाओ, तो सब पूछ बैठते—"कनुआ ! तेरी इनसे कबकी साँठि गाँठ हैं, तू उन्हें कैसे जानता है ?"

यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं किन्तु यह तो नरनाट्य कर रहे हैं। ग्वालबालों के साथ ग्रामीण ग्वालों का-सा अभिनयकर रहे हैं, इसमें यथा शक्ति ऐश्वर्य प्रकट न हो इसकी चेष्टा करते रहते हैं। इसीलिये पहिले गोपों से कहा—"तुम लोग याज्ञिक ब्राह्मणों के निकट अन्न माँगने जाओ।"

भगवान् की आज्ञा पाकर गोप गये और जाकर उन ब्राह्मणों को भूमि में लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्राह्मणों ने समझा ये तो कोई बड़े श्रद्धावान् भावुक भक्त हैं। अतः उन्होंने बड़े शिष्टाचार से कुशल पूछी। तब हाथ जोड़कर गोपों ने नम्रता पूर्वक कहा—"हे ब्राह्मणो ! हम आपके समीप एक आवश्यक कार्य से आये हैं।"

हमें भेजा है। वे ग्वाल बालों और बलरामजी के साथ गौएँ चराते हुये वृन्दावन से बहुत दूर निकल आये हैं। उन्हें बड़ी भूख लगी है अतः उनके लिये और उनके साथियों के लिये कुछ भोजन दीजिये।"

ब्राह्मणों ने कहा—"कहो भाई, क्या बात है ?

गोपों ने कहा—"हम वृन्दावन के रहने वाले ग्वाल-बाल हैं। हम सबके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। हम सदा उनकी आज्ञा मानते हैं। उन्हीं की आज्ञा से हम आपके समीप आये हैं। उन्होंने तथा उनके बड़े भाई बलदेवजी ने हमें आपके समीप भेजा है।"

ब्राह्मणों ने पूछा—"वे राम और कृष्ण कहाँ हैं, किस लिये उन्होंने तुम्हें हमारे समीप भेजा है ?"

गोपों ने कहा—"यहाँ से समीप ही वे जो हरे हरे वृक्ष दिखाई देते हैं, वहीं वे गौओं को चरा रहे हैं। उन्हें बड़ी भूख लग रही है, आपसे उन्होंने कुछ भोजन के लिये अन्न माँगा है, यदि आप दे सकते हों, तो कुछ बना बनाया अन्न दीजिये।"

ब्राह्मणों ने कहा—"हमारी उनसे जान नहीं, पहिचान नहीं उन्होंने हमारे पास ऐसे ही तुम सबको क्यों भेज दिया ?"

गोप बोले—"हे भूदेवगण !! सज्जन पुरुष गुणों के कारण ही सबके परिचित बन जाते हैं। जो सत्कर्म करते हैं, उस से सभी आशा रखते हैं। जो परोपकार करते हैं, उनमें सभी की आत्मीयता होती है। आप इतना भारी यज्ञ कर रहे हैं। आपके कार्य को ही देख सुनकर उन्होंने अनुमान लगा लिया होगा, कि आप सभी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं। धर्मात्मा से सभी आशा रखते हैं। फलवान वृक्ष के निकट ही लोग फल की आशा से जाते हैं, जो स्वयं सूखा है उस पर तो पक्षी भी नहीं बैठते। आपके धर्म कार्य को देखकर ही हम राम-श्याम की आज्ञा से आपकी सेवा में उपस्थित हुये हैं, यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियों के लिये थोड़ा भात दे दें।"

इस पर ब्राह्मणों ने कहा—"अरे, गोपो ! तुम तो गँवार ही रहे। तुम्हें शास्त्रीय विधि का ज्ञान नहीं। हम यज्ञ में

व्यक्ति हैं। शास्त्र की आज्ञा है, दीक्षित के अन्न को न खाना चाहिये, फिर तुम लोग हमारा अन्न कैसे खा सकते हो?"

इस पर एक वाचाल-सा गोप बोला—"ब्राह्मणो! हम लोग तो अवश्य गँवार हैं, किन्तु हमारा साथी श्रीकृष्ण इन सब बातों को बहुत जानता है। उसी के मुख से हमने सुना है, दो प्रकार के यज्ञ हैं, पशु यज्ञ और सोम यज्ञ। पशु यज्ञ में जिस दिन से दीक्षा ले और जिस दिन अग्निषोमीय पशु का बलिदान हो उस दिन तक उसका अन्न न खाने का विधान है। पशु-बलिदान हो जाने पर उसके अन्न खाने में कोई दोष नहीं। आपके यहाँ सुना पशुबलि कल ही हो चुकी, अतः आपके अन्न खाने में कोई शास्त्रीय दोष तो हमें दीखता नहीं, हाँ, यदि आप सोमयाग करते होते सौत्रामणी यज्ञ की दीक्षा लिये होते, तो आपका अन्न दीक्षा पर्यन्त सर्वदा ही अग्राह्य माना जाता। सो, आप सौत्रामणी यज्ञ तो कर नहीं रहे हैं। आप तो अङ्गिरस नामक पशु यज्ञ कर रहे हैं। बलिदान समाप्त ही हो गया, अब आप अन्न दे सकते हैं, हम ले सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वे फल के हेतु से कर्म करने वाले क्षुद्र प्रकृति के थे। वे तो कर्मासक्त स्वर्ग की स्वल्प इच्छा रखने वाले कर्मठ थे। यद्यपि वे थे, तो सीमित और संकीर्ण विचार के ही, किन्तु अपने को बहुत बड़ा मानते थे। उन याज्ञिकोंने गोपों की बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। उनकी युक्ति युक्त बातों को सुनकर वे सिटपिटा गये। उन्होंने न गोपों से हाँ देंगे, यही बात कही और यही न कहा कि भाग जाओ हम नहीं दे सकते। वे पीठ फेरकर दूसरे काम में लग गये; कुछ बोले नहीं।

मना करने के कई प्रकार होते हैं। एक तो स्पष्ट मना करना, दूसरे कोई ऐसी असंभव बात लगा देना कि वह पूरी ही न हो,

तीसरे किसी और के ऊपर टाल देना, चौथे चुप हो जाना, हाँ, ना कुछ भी न कहना। पाँचवें बात को टालकर इधर उधर की अप्रासंगिक बातें करने लगना। गोपों ने जब देखा, इन ब्राह्मणों की अन्न देने की इच्छा नहीं है, तो वे सब निराश होकर लौट गये। जाकर उन्होंने भगवान् से कहा—"कनुआ भैया ? किन दरिद्रियों के पास तैंने हमें भेज दिया। अरे, वे तो बड़े सूमड़े निकले। वे तो बात को पी गये। अन्न देना तो कौन कहे, मधुर वाणी भी नहीं बोली।

भगवान् ने देखा, भूख के कारण गोपों का मुख कुम्हिला गया है, वे बड़े निराश हो रहे हैं। तब उन्होंने कहा—"अरे, तुम लोग निराश हो गये क्या ?"

गोपों ने कहा—"अरे, भैया ! निराशा की तो बात ही है, जनम करम में तो माँगने गये, सो भी रिक्त-हस्त लौटे। कुछ भी मिला नहीं। हमारी तो अन्तरात्मा जल भुन गई।"

गोपों को दुखित और क्रोधित देखकर भगवान् न दुखी हुए न उन्होंने उन अज्ञ ब्राह्मणों पर क्रोध ही किया। यद्यपि उन मूर्खों ने अनुचित व्यवहार किया। भगवत् आज्ञा का तिरस्कार किया भगवान् यज्ञ से भिन्न थोड़े ही हैं देश, काल, यज्ञीय छोटे बड़े समस्त द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म ये सब भगवान् की ही तो मूर्ति हैं ये भगवान् के ही तो अंग हैं। इन सबके अंगी स्वयं साक्षात् परम ब्रह्म अधोक्षज श्रीहरि को उन अज्ञों ने साधारण व्यक्ति समझकर उनका सम्मान नहीं किया, फिर भी भगवान् ने उनकी अज्ञता को क्षमा कर दिया। वे गोपों को आश्वासन देते हुए बोले—"अरे, भैयाओ ! निराशा की कोई बात नहीं। भीख माँगने जब जाय, तो मान अपमान को घर खुंटी पर ही टाँग कर जाना चाहिए। भीख माँगने

यह पहिले ही सोचकर जाय, कि जिसके समीप माँगने जाते है वह मना करने में स्वतन्त्र है। किस माँगने वाले का तिरस्का नहीं हुआ। वामन भगवान् भी जब वलि के यहाँ माँगने गये त छोटे बोना, बनकर गये थे। मनस्वी और कार्यार्थी को सुख दु की मान अपमान की चिन्ता न करनी चाहिये। मेरे कहने से तु एक बार और जाओ। अब के ब्राह्मणों के पास न जाकर उनव पत्नियों के पास जाना।"

गोपों ने भूख के मारे दीनता के स्वर में कहा—"अरे, भैय कनुआ! तू हमें लुगाइयों के पास क्यों भेजता है। ये लुगाइयाँ त बड़ा सूमड़ी होता हैं। जिनमें इनका ममत्व होता है, उसे त अच्छी अच्छी वस्तु खिलाती है। ऐसे वैसे को वैसे ही टरका देत है। अपना पति हो पुत्र हो सगा भाई हो उसे तो चुपके चुपक सुन्दर सिकी चुपड़ी चुपड़ी पतली पतली रोटी दे देंगी। शेष जेत ससुर, देवर या अन्य ऐसे ही लोगों को जैसी तैसी देकर पिंड छुड़ावेंगी।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और उनमें से जो गोप बहुत बोल रहा था, उससे बोले—"प्रतीत होता है, तेरी भाभी तुमे बासी, कूसी, जूठी, झूठी रोटी दे देती है। भैया! सब स्त्रियें एक-सी कजूसिनी नहीं होतीं। कुछ गृहलक्ष्मी भी होती हैं, वों तो पुरुषों में, स्त्रियों में सभा में कृपण होते हैं। अच्छा थोड़ी देर को मानलो ये स्त्रियाँ कृपण भी हो, तो भी तो उन्हीं से माँगना होगा। दूध तो गैया ही देगी बैल तो दूध देता नहीं। भोजन माँगने तो लुगाइयों के ही पास जाना होगा। वे विप्र पत्नियाँ ऐसी नहीं हैं। उनकी मुझ में अत्यन्त प्रीति है, यद्यपि उनका तन वहाँ रहता है, किन्तु मन सदा मेरे में ही लगा रहता है। तुम चिन्ता मत करो तुम बलदाऊभैया का तथा मेरा नाम लेना वे तुम्हें अवश्य अन्न देंगी।"

हमारे कनुआ भैया की उन लुगाइयों से जान पहिचान है यह सुनकर गोपों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उल्लास के स्वरमें बोले—"अच्छा, भैया तेरा उनका मेल जोल है? कब से तेरी उनकी जान पहिचान है।"

भगवान ने प्रेम के रोष में उन्हें कुछ झिड़कते हुए कहा—"अरे, तुम तो बाल की खाल निकालने लगे। तुम्हें आम खाने या पेड़ गिनने। मेरी कब की भी जान पहिचान हो, इस बात से तुम्हें क्या प्रयोजन? तुम मेरा बलदाऊ का नाम लेना अब के तुम्हें अन्न अवश्य मिलेगा।"

गोपों ने कहा—"अरे, भैया! हम तेरी बात टाल तो सकते नहीं, जाते हैं, किन्तु ऐसा न हो, फिर हमें निराश होकर लौटना पड़े। तेरी तो उनसे जान पहिचान है ऐसा न हो तेरे लिये और बलदाऊ के लिये दो पत्तलें लगा दें चार चार पूड़ियाँ और तनिक तनिक-सा भात साग रखकर देदें तुम दोनों तो उड़ा-जाओगे। हम सब फिर भी ठठनपाल मदन गुपाल ही रह जायँगे।"

यह सुनकर भगवान ठठाका मारकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"अरे, सारे ओ! क्यों घबड़ाते हो। अब के ऐसे माल मिलेंगे कि तुम वर्षों को तृप्त हो जाओगे। लुचलुचे चमुर-मुरे गरमा गरम माल मिलेंगे। जाओ, देरी करने का काम नहीं है।"

भगवान् की बात सुनकर वे प्रसन्नता पूर्वक फिर यज्ञ मंडप-की ओर चले। अब के वे दूसरे मार्ग से गये, कि ब्राह्मण उन्हें देख न लें। सबसे पीछे जो पाक शाला बनी थी, उसमें जाकर उन्होंने भूमि में लोटकर द्विज पत्नियों को प्रणाम किया और कहा—"मैया ओ डंडोत।"

उस समय सभी द्विज पत्नियाँ घर से सब काम करके

शृङ्गार किये हुए स्वस्थ चित्त से सुख पूर्वक बैठी हुयीं परस्पर
कृष्ण कथा कह रही थीं और आनन्द में विभोर हो रही थीं
समय और परिस्थिति का भी याचना पर बड़ा प्रभाव पड़ता है
यदि चित्त व्यग्र हो, किसी चिन्ता में निमग्न हो, अपने कि
अत्यन्त प्यारे से प्रेम की बातें कर रहे हों, शौचादि को जा र
हो, साधारण वस्त्रों में या नंगे बैठे हो, कोई ऐसा वैसा साधार
काम कर रहे हों, ऐसे समय माँगने जाय तो उसे निराश होक
लौटना होगा। ऐसे याचक को ऐसे समय जाना चाहिये जब दा
अव्यग्र चित्त से सुख पूर्वक बैठा है, अच्छी प्रकार सज बज क
अपने पद के अनुरूप वस्त्रों भूषणों से अलंकृत हो कोई धर्म सद
व्यार के अच्छे कार्य कर रहा हो, उस समय जो याचना की जा
है, वह प्रायः निष्फल होती ही नहीं। गोप सौभाग्य से ऐसे ह
समय गये। फिर वे तो *भगवान् के भेजे गये थे,* चाहे जब भ
जाते भक्त तो भगवान् की आज्ञा का पालन सर्वदा ही करने क
प्रस्तुत रहते हैं।

गोपों को देखकर लजाते हुए उन द्विज पत्नियों ने पूछा—
"कहो, भैया ! क्या बात है ?"

इस पर गोपों ने कहा—"देवियो ! हम जो निवेदन करते है
उसे आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें। हमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी
ने भेजा है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! भगवान् ने तो कहा, तुम बल
दाऊजी का मेरा दोनों का नाम लेना। कहना दोनों ने हमें भेजा
है।" गोपों ने अकेले श्रीकृष्ण का ही नाम क्यों लिया ?"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी बोले—"अजी, महाराज ये सब
तो कहने की तिकड़म बाजी है। गोप भी समझते थे, भगवान् ने
आदर सम्मान करने के लिये बलदेवजी का नाम ले दिया है।
बलदाऊजी भी समझते थे, मेरी उनसे जान नहीं पहिचान नहीं।

वे देंगी तो श्रीकृष्ण के ही नाम से देंगी। कुछ शिष्टाचार की बातें कही जाती हैं और ढँग से उनका अर्थ और व्यवहार होता है अन्य ढँग से।"

यह सुनकर हँसते हुए शौनकजी बोले—"अब सूतजी! इन तिकड़मकी बातों को तो तुम ही समझो। प्रेम का मार्ग बड़ा विचित्र है इसकी उठन, बोलन, चितवन, भाषा सभी में रहस्य भरा होता है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले—"महाराज! आनन्दकन्द नन्दनन्दन व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र का नाम सुनते ही वे सबकी सब द्विज पत्नियाँ चौंक पड़ीं और बोलीं—"क्या कहा ग्वाल बालो! श्यामसुन्दर यहाँ कहीं समीप में आये हैं? कहाँ हैं? क्या कर रहे हैं? कब तक रहेंगे? कितनी दूर हैं?

द्विज पत्नियों को इस प्रकार उत्सुकता पूर्वक प्रश्न करते देख कर गोपों का हृदय बाँसों उछलने लगा। वे बोले—"यहाँ से समीप ही वह देखो उस वट के समीप ही श्याम सुन्दर अपने बड़े भाई बलदेवजी के साथ गौएँ चरा रहे हैं। आज भूल भूल में बात करते करते बहुत दूर निकल आये हैं। दो पहर ढल गया आज उनकी छाक भी नहीं आई। उन्हें बहुत भूख लग रही है। यदि तुम दे सकती हो, तो उनके लिये कुछ अन्न हमें देदो।"

"श्याम सुन्दर समीप ही आये हैं और वे भूखे हैं, इतना सुनते ही द्विज पत्नियों की विचित्र दशा हो गई। हाय! श्याम-सुन्दर हमारे समीप आये भी तो भूखे आये। धन्य है, आज हम अपने हाथों से परोस कर उन्हें खिलावेंगी। हमारे ये हाथ सफल हो जायँगे। इतने दिन से जो भोजन बनाने में श्रम करती रही हैं आज हमारा सब श्रम सार्थक हो जायगा। श्यामसुन्दर सखाओं सहित हमारे बनाये भोजन को पावेंगे।" इस।

आते ही उनके रोम रोम खिल उठे। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर तो वे बैठी थीं। भगवान् के दर्शनों की लालसा ने उनके चित्त को अत्यन्त चञ्चल बना दिया था। नित्य निरन्तर उन पुण्य कीर्ति प्रभु की कीर्ति सुनते सुनते उनका मन उनमें मिल गया था।

इतने दिन से जो तपस्या की, आज उसके फल मिलने का समय आ गया। वे परस्पर में कहने लगीं। अहा ! आज हमारा जीवन सफल हो जायेगा। श्याम हमारे हाथ का बना प्रसाद पायेंगे।"

गोपों ने देखा ये तो बार बार श्यामसुन्दर का ही नाम ले रही हैं। ऐसा न हो कि एक पत्तल थमाकर कह दें ले जाओ।" इसलिये वे बोले—"देवियो ! श्रीकृष्ण के साथ बहुत से ग्वाल बाल हैं, सबके सब भूखे हैं। श्याम-सुन्दर अकेले नहीं खाते हैं, अपने सखाओं को साथ बिठाकर तब गोष्ठी करते हैं।"

द्विज पत्नियों ने कहा—"भैया ! तुम चिंता मत करो। उनका दिया हुआ हमारे यहाँ सब कुछ है बहुत है। हम सब के लिये स्वयं ही लेकर चलती हैं, तुम तनिक हमें मार्ग बताते चलना कि श्याम कहाँ हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह सुनकर गोपों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। भूख के कारण वे व्याकुल हो रहे थे। सोच रहे थे भोजन हमें वहाँ तक ढोना पड़ेगा। बीच में जीभ से लार गिरने लगी और मार्ग में ही चट्ट गये, तब राम-कृष्ण देखते के देखते ही रह जायँगे।' यही सोचकर वे बोले—देवियो ! आप भोजन के थालों को सम्हाल लो तब तक हम खड़े हैं।"

यह सुनकर शीघ्रता से जो भी कुछ उनके यहाँ रोटी, पूड़ी, हलुआ, खीर, मालपुआ, लड्डू, दाल, भात, साग, चटनी, फल-

फूल जितने प्रकारके भी भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य पदार्थ थे सबको सजाकर श्रीकृष्णके समीप जानेको उद्यत हुईं।

छप्पय

बोले अबकैं जाउ विप्रपत्निनि के ढिँग तुम।
अन्न देहि ते अवसि स्वादतैं खावैं सब हम॥
सुनि बोले गोपाल-यार !-क्यों हँसी करावे।
क्यों उन कृपननि नारि निकट अब हमें पठावे॥
नँदनँदन हँसिकें कहें, दूध बैल देवे नहीं।
लात दुधारहु गायकी, खाइ मनुज लेवे नहीं॥

द्विज-पत्नियोंको दामोदरके दर्शन

(६४३)

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह—
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम्,
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० २३ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

चले फेरि सब ग्वाल गये द्विजपतिनि पाहीं ।
हरिकी सबई बात विनयतैं तिनहिं सुनाईं ॥
अति प्रसन्न सब भईं धन्य निज जीवन जान्यो ।
आज होहिं हरि दरश सुदिन सबने अति मान्यो ॥
मीठे खट्टे नमकयुत, कटुक कसैले चरपरे ।
अति उज्ज्वल बर थाल सब, षडरस व्यञ्जनतैं भरे ॥

जीवोंके समस्त पुरुषार्थ भगवान्‌के दर्शनोंके ही लिये हैं। नन्दनन्दनके दर्शन हो जायँ, जीवन सफल हो जाय, किन्तु उनके

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! द्विज-पत्नियोंने गोपोंसे घिरे श्यामसुन्दरको देखा उनका शरीर श्याम था, स्वर्ण वर्णका पीताम्बर वे पहिने थे, वनमाला, मोरपङ्ख, विविध धातु तथा नवीन पल्लव आदि वस्तुओंसे नटवर वेष बनाये हुए थे, उनका एक हाथ तो सखाके कंधेपर था, दूसरेसे क्रीड़ा-कमलको घुमा रहे थे। कानोंमें कमलपुष्पोंकी कपोलोंपर अलकोंकी और मुखारविन्दपर मनोहर मुसकानकी अद्भुत छटा थी।"

दर्शन कहाँ जाने से हो सकेंगे, क्या करने से होंगे, कब होंगे, कैसे होंगे; इसका कुछ निश्चय नहीं। वे एक स्थान में रहते नहीं। एक वन से दूसरे वन में दूसरे वन से तीसरे वन में घूमते रहते हैं। वे साधन साध्य हैं भी नहीं जो किसी एक साधन से मिल जायँ। वे किसी एक स्थान के बन्धन में भी नहीं, कि वहाँ जाने पर मिल जायँ। उनकी प्राप्ति तो एकमात्र सच्ची लगन से होती है। तुम कहीं भी मत जाओ, जहाँ हो वही रहो, निरन्तर मन से उनका ही चिन्तन करते रहो, कान से उनके ही गुणों को सुनते रहो। परस्पर में बातें करो तो उन्हीं के सम्बन्ध की करो। इस प्रकार तद्गत होने से—समस्त चित्त की वृत्तियों को उनमें ही लगा देने से—वे स्वयं ही अपने आप आ जायँगे। आकर अपने आने की सूचना अपने अनन्य जनों द्वारा देंगे। उनके तदीय अनन्य जन आगे चल कर उनके समीप पहुँचा देंगे। जहाँ प्रभु के आगमन का शुभ समाचार सुना, जहाँ तदीय आगे आगे हमें लेकर चल पड़े तहाँ श्रीकृष्ण-दर्शन में फिर देरी नहीं होती।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कृष्ण का आगमन सुनते ही वे द्विज पत्नियाँ सोने चाँदी के सुन्दर सुन्दर पात्रों में सुन्दर स्वादिष्ट अनेक गुण युक्त चार प्रकार के हृद्य अन्न रखकर वे उत्सुकता के साथ चलीं। उन्हें प्रियतम के मिलने की चटपटी लगी हुई थी। जैसे अत्यन्त प्यासा पपीहा स्वात बूँद की आशा से वर्षा में इधर से उधर दौड़ता है, जैसे रात्रि भर की वियोगिनी चकवी दिन होते ही उस पार बैठे अपने पति की ओर दौड़ती है, जैसे नदियाँ बड़े वेग से टेढ़ी मेढ़ी चल के अपने प्राण वल्लभ पयोनिधि के पास उससे सङ्गम करने दौड़ती हैं; उसी प्रकार वे, स्वयं सज-धजकर भोजनों को सजा धजाकर श्यामसुन्दर के समीप शीघ्रता से जा रही थीं।"

ब्राह्मणों ने देखा—ये सब झुण्ड की झुण्ड इतनी तैयारियाँ करके कहाँ जा रही हैं। वे उन्हें व्यग्रता से वन की ओर जाते देखकर दौड़कर उनके समीप आये। उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्र तथा अन्यान्य सगे सम्बन्धियों ने उनका मार्ग रोक लिया। सबने कहा—"कहाँ जा रही हो।"

इन सबने कहा—"श्यामसुन्दर गौएँ चराते हुए यहाँ समीप आये हुए हैं, हम सब उन्हें भोजन कराने साथ साथ जा रही हैं।"

उनके सम्बन्धियों ने कहा—"यहाँ कितना कार्य पड़ा है। कल यज्ञ की पूर्णाहुति है। कितना सामान बनाना है। तुम इधर उधर जाने में ही व्यर्थ समय बिता रही हो।"

उन्होंने कहा—"व्यर्थ नहीं यही तो सार्थक समय है। हमारा सब कुछ श्यामसुन्दर के ही लिये है।"

वे क्रोध करके बोले—"श्यामसुन्दर ही सब कुछ हो गये। हम कुछ भी नहीं रहे, हमारे लिये मानों तुम्हारा कोई कर्तव्य ही ही नहीं।"

उन द्विज पत्नियों ने कहा—"तुम सबके लिये कर्तव्य उन्हीं के सम्बन्ध से है। वे ही सबके पूजनीय हैं सर्वस्व हैं, जो उनसे प्यार करते हैं, उनके उपासक उनसे भी प्यार करते हैं। सब नाते संसार को लेकर नहीं हैं कि ये हमारी बहिन के पति हैं देवर हैं नाते तो नन्दनन्दन के सम्बन्ध से ही हैं।"

उनमें से बहुतों ने क्रोध करके कहा—"अच्छी बात है, जब वे ही तुम्हारे सब कुछ हैं, तो अब उनके ही पास रह जाना, लौटकर यहाँ आने का काम नहीं है।"

सम्बन्धियों की इस प्रकार धमकी देने पर भी वे अपने संकल्प से विचलित नहीं हुई। उन्होंने गोपीजन-वल्लभ ब्रज-जीवनधन श्यामसुन्दर के निकट जाने में तनिक भी शिथिलता

नहीं की। वे उनकी बातों की ओर कुछ भी ध्यान न देकर श्याम-सुन्दर के समीप चल ही तो दीं। चलते समय उनके पैरों के कड़े छड़े पाइजेब आदि आभूषण छम्म छम्म करके बज रहे थे। एड़ी तक लटकती हुई फुन्दोंदार चोटियाँ हिल रही थीं। हाथों पर स्वच्छ शुभ्र वस्त्रों से ढके हुए पात्र रखे थे। वायु वेग से उनके वस्त्र हट जाते और उनमें से सुगन्ध फैलकर दशों दिशाओं को सुगन्ध मय बना देती। उनकी स्वाँस से सुगन्ध निकल रही थी, उनके शरीर से, वस्त्रों से तथा षडरस व्यञ्जनों से भी सुगन्ध निकल रही थी। उनके विचारों की भी बड़ी सुन्दर सब ओर फैलने वाली सुगन्धि थी।

इधर श्यामसुन्दर भी प्रतीक्षा में बैठे थे, उन्हे भी अपनी अनुरक्ता भक्ता यज्ञ-पत्नियों से मिलने की चटपटी लगी थी। भक्त भगवान के लिये उतना उत्सुक नहीं होता, जितना भगवान् भक्त से मिलने को समुत्सुक बने रहते हैं। भगवान ने सोचा— "गोपों को गये तो बड़ी देर हो गयी। वे अब तक लौटे क्यों नहीं। सम्भव है अन्न न रहा हो। फिर से बना रही हों। यह तो हो नहीं सकता कि वे सुनें और मेरे समीप न आवें। भगवान् को भी विकलता पड़ रही थी, वे भी एक सखा के कंधे पर हाथ रखे इधर से उधर घूम रहे थे। बार बार झाँक कर देख रहे थे, कि कहीं इधर से तो नहीं आ रही हैं कभी टीले पर चढ़ जाते कभी दूर तक दृष्टि दौड़ाते इसी समय उन्हें छम्म छम्म की ध्वनि सुनायी दी। भगवान् का हृदय बाँसों उछलने लगा। अपने अनु-रक्त भक्त के मिलने में ऐसा ही सुख होता है।

द्विज पत्नियों ने भी दूर से सखा के कंधे पर हाथ रखे नटवर को देखा। अब तक वे श्यामसुन्दर की प्रशंसा केवल कानों से सुनती ही रही थीं, उन्होंने आज तक उन्हें देखा नहीं था। अह उस साँवरी सूरत मोहनी मूरत को देखकर, वे अबलायें सबला, पत्

गयीं, उनके नेत्र तृप्त हो गये, वे अपलक भाव से मनमोहन के मुख को मधुर माधुरी का मत्त होकर पान करने लगे। नवीन जलधर के समान श्याम का श्रीअङ्ग श्यामवर्ण का था, चटकदार, सुवर्ण वर्ण का पीताम्बर उनके श्रीअंग में लिपट रहा था, मानों श्याम घन से बिजली लिपट गयी हो। उनके शिर पर मोरमुकुट शोभा दे रहा था। श्रीअंग में गेरू, सेलखड़ी, यमुना-रज, घिसे कंकड़ ये गोपों ने शृङ्गार के लिये लगा दिये थे, इससे उनकी शोभा विचित्र बन गयी थी। उनके चरण, मुख, तथा कर कमलों के सदृश कोमल लाल और सुहावने थे, कमलों की माला वे धारण किये हुए थे, कानों भी कमल लगाये हुए थे। हाथ से भी क्रीड़ा कमल घुमा रहे थे। कपोलों पर अलकावली विथुर रही थी, मानों पंक्ति बद्ध अटके हुए मधुकर कमल के रस का पान कर रहे हों। मनोहर मुखारविंद पर मन्द मन्द मुसकान छा रही थी।

श्यामसुन्दर की उस भुवन-मोही मूरति को वे सब अंतःकरण में ले गयीं और मन से ही उनका बड़ी देर तक आलिङ्गन करती रहीं। चिरकाल तक मन से आलिङ्गन करते करते वे तन्मय हो गयीं और इस प्रकार वे अपने हृदय के सन्ताप को शान्त करने लगीं।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! मन से आलिङ्गन करने से हृदय का संताप शान्त कैसे होता होगा?"

सूतजी बोले—"भगवन्! यह सब मन का ही तो विलास है; जो हम मन से सोचते हैं, वही कर्मेन्द्रियाँ से करने लगते हैं। यथार्थ मिलन तो मन का ही है। शारीरिक मिलन तो अत्यन्त हेय है, वह तो मन की स्मृति को जागृत करने के लिये है। मन न मिला हो तो शरीर के मिलने से कोई लाभ नहीं। मन मिला है तो शरीर कहीं भी पड़ा रहे; मन से सदा एक ही बने

रहते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थायें हैं, इन तीनों से पृथक् करने के निमित्त चौथी तुर्यावस्थाकी भी कल्पना की है। वास्तव में अवस्थायें तीन ही हैं। इन तीनों अवस्थाओं के अभिमानी क्रमशः विश्व, तैजस् और प्राज्ञ ये तीन हैं। जाग्रत अवस्था में उसके अभिमानी विश्व को पाकर अहं वृत्तियाँ विश्व को देखती हैं उसी का मनन करती हैं, किन्तु सुषुप्ति अवस्था में प्राज्ञ को पाकर अहं वृत्तियाँ उसी में तन्मय हो जाती हैं। प्रगाढ़ निद्रा में न तो स्वप्न ही देखता है न कोई स्मृति ही रहती है, एक प्रकार के अपूर्व सुख का अनुभव होता है। जब जागते हैं, तब कहते हैं "आज बड़े सुख से सोये; बड़ी मीठी नींद आयी। कुछ भी भान नहीं रहा।"

अब सोचिये कुछ भी भान नहीं रहा, तो यह किसने बताया कि बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।" वास्तव में दुःख तो प्राज्ञ को न पाकर इधर उधर भटकने में ही है। अहं वृत्तियाँ जब तक असत् पदार्थों में सांसारिक सम्बन्ध में भटकेंगी, जब तक वे हाड़ मांस के शरीरों के आलिङ्गन के लिये उत्सुक बनी रहेंगी तब तक चैतन्यघन स्वरूप श्यामसुन्दर की प्राप्ति कैसे होगी। जब जीव इन सब संसारी सम्बन्धों को, इन भौतिक पदार्थों की भोगवासना को छोड़कर श्यामसुन्दर की ओर बढ़ेगा, तो उसे ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त होगा। श्यामसुन्दर तो दिव्य हैं, चिन्मय हैं, उनका मानसिक संस्पर्श ही समस्त संताप को नाश करता है। फिर जो विकलता बढ़ती है, वह प्रेम वृद्धि के निमित्त होती है। जब तक जीव धन में विषयों के भोगों में संसारी सम्बन्धों में आसक्त रहता है, तब तक श्यामसुन्दर उसे नहीं बुलाते। जब वे देखते हैं सब प्रकार की कामनाओं को छोड़कर केवल मेरे दर्शनों की ही लालसा से आया है तो वे हँस जाते हैं उसे अपना लेते हैं, उसका 'सुस्वागतम्' कहकर स्वागत करते हैं।

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी ! ठीक है। कथा कहिये।"

सूतजी बोले—"हाँ, तो जब थाल सजाये बिजली-सी चमकती हुई उन चन्द्रवदनियों को भगवान् ने आते देखा तो मन्द मन्द मुसकराते हुए हँसते हँसते वे बोले—"आइये। आइये स्वागतम् स्वागतम्। मंगलम् मंगलम्। साधु साधु। आप सबका आना शुभ हुआ। हम आप सबका स्वागत करते हैं। थालों को घासपर रखिये।' यहाँ हमारे समीप आकर बैठिये। हमारे योग्य कोई कार्य हो तो बताओ। हम तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करें। कहो कैसे कष्ट किया ?"

अमृत में सने हुए मदनमोहन के मधुरातिमधुर हास्य युक्त वचनों को सुनकर द्विजपत्नियों का रोम रोम खिल उठा। अहा, ये कितने सरस हैं, कितने आकर्षक हैं कितने हँसमुख हैं, कितने विनोदी हैं। कैसे आत्मीयता से प्रश्न पूछते हैं। इन्होंने हमारे मन को मथ दिया। प्रतिक्षण ये ही हमें व्याकुल बनाये रहते हैं, इनकी ही मीठी मीठी स्मृति हमारे हृदय में चुभ चुभ कर एक न एक मधुमयी वेदना को बनाये रखती है। ये पूछ रहे हैं क्यों आयीं। बताओ इसका क्या उत्तर दें ? ये ही तो खींचकर ले आये हैं। नहीं हमारे सम्बन्धी तो बार बार मना कर थे, उधर मत जाना। किन्तु पैर अपने आप इधर ही चले आये। कुछ तो इन्हें उत्तर देना ही होगा। अतः लजाती हुई वे नीचे देखते देखते ही बोलीं—"आपके दर्शनों के लिये आई हैं।"

यह सुनकर दामोदर दशों दिशाओं को अपने अट्टहास से प्रतिध्वनित करते हुए बोले—"अच्छा, मेरे दर्शनों के लिये आई हो बड़ी सुन्दर बात है, पेट भरकर मेरे दर्शन करलो। मेरे दर्शन करना यही तो जीव का परम पुरुषार्थ है। अज्ञ मूर्खों की बात तो छोड़ दो। ज्ञानी विवेकी पुरुष मुझे ही अपना सच्चा साथी

समझते हैं इसीलिये वे मुझे अपना अत्यन्त सुहृद समझकर प्रियजन के समान–सच्चे सुहृद के समान–मुझमें ही निष्कपटभाव से निरन्तर अहैतुकी भक्ति किया करते हैं।" लोग कहते हैं, ये हमें प्राणों के समान प्यारे हैं। मैं प्राणों का भी प्राण हूँ। मन, बुद्धि, देह, स्त्री, पुत्र, पति तथा धन ये सब मेरी सन्निधि से ही प्रिय प्रतीत होते हैं। क्योंकि मैं आत्मा का भी आत्मा परमात्मा हूँ। मुझसे प्यारा और इस संसार में दूसरा कौन हो सकता है ? प्यारे के दर्शन करना यह तो उचित ही है। दर्शन तुम पेट भर करलो और फिर अपने डेरे का मार्ग पकड़ो। दर्शन करके लौट जाओ।"

यह सुनते ही मानों द्विजपत्नियों के ऊपर तो वज्र पड़ गया हो ये पुरुष कितने वज्र हृदय के होते हैं, इतने सौंदर्य में इतनी सुकुमारता में इतनी कठोरता भी छिपी रहती है। ये कहते हैं यहाँ से चली जाओ।" यह सोचकर वे बड़े दुःख से बोलीं—"कहाँ लौट जायँ, श्यामसुन्दर ! अब हमारे लिये कोई लौटने को स्थान शेष रह गया है क्या ?"

भगवान् सरलता से बोले—"अपने पतियों के पास यज्ञशाला में ही लौट जाओ जहाँ से तुम आई हो।"

"वहाँ जाकर हम क्या करेंगी, प्राणवल्लभ ! भर्राये हुए गद्‌गद कंठ से द्विजपत्नियों ने कहा।

भगवान् बोले—"देखो, जिसके साथ बैठकर गाँठ जोड़कर यज्ञ किया जाय उसी स्त्री में पत्नीत्व होता है। पत्नी के बिना पुरुष यज्ञ करने का अधिकारी नहीं। पत्नी के बिना यज्ञ पूरा भी नहीं होता। तुम्हारे पति यज्ञ कर रहे हैं, यज्ञ की पूर्णाहुति में उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है। पत्नी के बिना गृहस्थ धर्म हो ही नहीं सकता। तुम्हारे पति तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे होंगे।"

द्विजपत्नियों ने अत्यन्त दुःख के साथ अश्रु विमोचन करते

हुए कहा—"श्यामसुन्दर! तुम इतने सुन्दर होकर ऐसी कठोर बात अपनी प्यारी वाणी से कैसे निकाल रहे हो। हाय! हम तो सब छोड़ कर तुम्हारे चरणों की शरण में आयी हैं, तुम हमें दुतकार रहे हो। कह रहे हो यहाँ से चली जाओ। भला, यह भी कोई अच्छी बात है। इसी का नाम अपनाना है क्या? सज्जन पुरुष जिसे एक बार अपना लेते हैं, उसे जीवनपर्यन्त कभी छोड़ते नहीं। हम और कुछ नहीं चाहतीं आपका उच्छिष्ट प्रसाद चाहती हैं आपके चरणों में चढ़ी तुलसी की माला को अपने जूड़ों में खुरसना चाहती हैं।

भगवान् बोले—"देखो, अभी तुम्हें गृहस्थ में ही रहना चाहिये। तुम्हारे पति, पुत्र तथा बन्धु बान्धवों को तुम्हारी अभी आवश्यकता है।"

द्विजपत्नियों ने रोते रोते कहा—"उन्हें आवश्यकता हो, हमें तो उनकी आवश्यकता नहीं है। जब यथाथ पति आप हमें मिल गये, तो फिर उन्हें लेकर हम क्या करेंगी। आपका धाम तो वह है, जहाँ जाकर किसी को लौटना नहीं पड़ता. फिर आप हमें लौटाकर अपने वेद वाक्यों को असत्य क्यों कर रहे हैं। रही पति पुत्र तथा स्वजनों की आवश्यकता की बात। सो, उन्हें हमारी आवश्यकता नहीं है। हम उनकी इच्छा के विरुद्ध—उनकी आज्ञा की अवहेलना करके—यहाँ आयीं हैं। आप हमें बल पूर्वक वहाँ भेज भी देंगे तो भी वे हमें अब ग्रहण न करेंगे उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया है। अब यहाँ मत आना वहीं रहना। इसलिये अब आप ही अपने चरणों में हमें शरण दीजिये। आप ही हम निराश्रिताओं को आश्रय प्रदान कीजिये।"

भगवान् ने कहा—"ऐसी बात नहीं है। उन लोगों ने बिना समझे बूझे रोष में भर कर ऐसी बात कहदी होगी। अब जब

तुम मेरी आज्ञा से वहाँ लौटकर जाओगी, तो तुम्हारे पति, माता, पिता, भाई और पुत्रादि तथा अन्य स्वजन कुटुम्बी सगे सम्बन्धी तुम्हारी अवज्ञा नहीं करेंगे। प्रत्युत आदर ही करेंगे।"

द्विजपत्नियाँ उदास हो गयीं। वे कुछ न बोलीं अश्रु बहाती हुई नीचे देखने लगीं। तब भगवान् ने अपनी शक्ति से स्वर्गीय देवताओं का आह्वान किया जो सब कर्मों के साक्षी हैं। उन्हें दिखा कर भगवान् बोले—"देखो, देव गण भी मेरी बात का अनुमोदन कर रहे हैं। घर जाने पर कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा, तुम निर्भय होकर लौट जाओ।

अत्यन्त ही लजाते हुए द्विजपत्नियों ने कहा—"घर वाले प्रसन्न हो जायँ, हम इतना ही तो नहीं चाहतीं। हम तो आपके श्रीअंग का सङ्ग चाहती हैं।"

भगवान् ने कहा—"देखो, यह लोगों की धारणा भ्रम-मूलक है, कि अनुराग या प्रेम अङ्गसङ्ग से ही होता है, अंग संग तो अत्यन्त निकृष्ट सुख है, क्षण भर का है, अन्त में उससे दुःख ही दुःख होता है। यद्यपि मेरा अङ्ग-सङ्ग संसारी पुरुषों के अङ्ग सङ्ग के सदृश नहीं है। मेरा दिव्य चिन्मय वपु है। मेरे अङ्ग सङ्ग से अत्यधिक अनुराग बढ़ता है, किन्तु केवल अङ्ग सङ्ग ही प्रीति या अनुराग का प्रधान कारण हो सो बात नहीं है। मन से मुझ में अनुराग करो। अपने मन को मुझमें मिला दो। सदा चित्त में मेरा चिन्तन करती हुई मेरे ध्यान में निमग्न रहो। मुझमें चित्त लगाने से अविलम्ब मुझे प्राप्त हो जाओगी।"

द्विजपत्नियों ने कहा—"आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है, किन्तु हमारी इच्छा है अपने हाथ से आपको भोजन परस कर खिला कर तब जायँ।

भगवान् ने कहा—"कोई बात नहीं थी, किन्तु तुम्हारे पति प्रतीक्षा में बैठे हैं, तुम्हारे बिना उनका कार्य हो नहीं सकता। इसलिये जाकर तुम उनका यज्ञ समाप्त करो।"

द्विजपत्नियो ने कहा—"प्रभो! हम मन से तो कभी जा नहीं सकतीं, यह शरीर है इसे आप चाहें जहाँ भेज दें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके वे द्विजपत्नियाँ इच्छा न रहने पर भी फिर लौटकर अपने सम्बन्धियों के समीप यज्ञशाला में चली गयीं। अपनी पत्नियों को पाकर वे वेदपाठी द्विज परम प्रमुदित हुए, उन्होंने न उनका निरादर किया न एक भी अप्रिय शब्द ही कहा। बड़े प्रेम से उन्हें साथ लेकर यज्ञ की पूर्णाहुति की। बड़ी धूमधाम से यज्ञ समाप्त हुआ।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जब द्विजपत्नियाँ सब कुछ छोड़कर भगवान् की शरण में गयी, तो फिर भगवान् ने उन्हें लौटा क्यों दिया। भगवान् तो शरणागत वत्सल हैं, जो उनकी शरण में जाता है, उसे अपना लेते हैं। उसे कभी निराश नहीं करते।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! निराश तो भगवान् ने नहीं किया। उन्हें अपना लिया। एक स्थान में तो ऐसा वर्णन आता है, कि जब द्विजपत्नियो ने बहुत आग्रह किया, तो उसी समय गोलोक से दिव्य विमान आये, उनमें उन सबके दिव्य देह को गोलोक भेजकर अपनी सहचरी बना लिया। उनकी छाया बनाकर द्विजों के यज्ञ में भेज दिया। कर्मकांडी द्विज इस रहस्य को क्या समझ सकते थे, उन्होंने उन्हें ही अपनी यथार्थ पत्नी समझा। जैसे भगवान् ने छाया की सीता बनाकर रख दी थी उसे रावण हर ले गया।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् यह छाया की फिर

क्यों बनाते हैं।"

सूतजी बोले—"महाराज! भगवान् का विनोद भी तो किसी प्रकार चलता रहे। संसार कर्मवासनाओं से ही चल रहा है। कर्मवासना न हों, तो संसार का खेल एक दिन भी न चले। संसार में सभी जीव कर्मों के अधीन बद्ध हों, तब तो संसार रौरव नरक बन जाय। बद्ध जीव इन संसारी भोगों को ही सब कुछ समझते हैं। पैसों के लिये चाहें जितना पाप करालो। धन इकट्ठा करने को चाहें जितना झूठ बुलवालो। कामवासना की पूर्ति के लिये लोग अनेक प्रकार के वेष बनाते हैं, धोखा देते हैं, ठगते हैं। कामिनी, कांचन और कीर्ति के लिये पाप करने से भी नहीं चूकते। यदि सभी स्वार्थी ही हो जायँ, तो संसार से दया धर्म, परोपकार, प्रेम, भक्ति आदि सद्गुण लुप्त ही हो जायँ। स्वेच्छा से अतिथि सत्कार करे कौन, भगवान् का नाम ले कौन, उनकी कथा कौन कहे। इसीलिये बद्ध जीवों के साथ कुछ ऐसे मुक्त जीव भी भगवान् की आज्ञा से इस पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं। जैसे राजा के गुप्तचर साधारण लोगों के वेष में रहकर साधारण लोगों में ही मिल जाते हैं। जेल में जाकर जेली बन जाते हैं। उन्हें कोई पहिचान नहीं सकता कि ये राजकर्मचारी हैं किन्तु भेदिया उन्हें जानते हैं, इसी प्रकार भगवान् के जो अनन्य हैं उनके हृदय में भी भगावान् जान बूझकर कुछ बासनायें भर देते हैं। वे अपने यथार्थरूप से तो भगवान् के साथ विहार करते हैं छाया-रूप से यहाँ मनुष्यों में रहकर मनुष्यों के-से आचरण करते हैं। लोगों को सेवाका पाठ पढ़ाते हैं, परोपकार सिखाते हैं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों का कार्य करते हैं। भगवान्-की सेवा पूजा करते हैं। जय, विजय के मन में युद्ध की वासना भगवान् ने देदी। इसलिये उनके छाया-शरीर से रावण कुंभ-करणका जन्म हुआ। एक गोपी के मन में प्रेम की वासना देदी।

यह मीराबाई बनकर पृथिवी पर प्रेम का प्रसार करती रही। इसी प्रकार उन यज्ञ-पत्नियों की भी कुछ वासनायें शेष थीं, अतः उनमें से बहुत-सी पृथिवी पर फिर उत्पन्न होकर भगवत् पूजा परोपकार करके पुनः अपने प्रतिबिम्बको बिम्ब में मिलाती हैं। भगवान् की सोलह सहस्र पत्नियाँ थीं। भागवान ने उन्हें अपनाया ही था, पाणिग्रहण किया फिर भी गोपों ने उन्हें छीन लिया। एक स्थान में आता है वे फिर सबकी सब वेश्या बन गयीं; वेश्या-वृत्ति करने लगीं। किसी मुनिने उन्हें उपदेश दिया तो वेश्या-वृत्ति करते करते उनके बताये साधन से अपने बिम्ब में मिल गयीं। यह सब भगवान् की क्रीड़ा है। भगवान् जैसे रखें वैसे रहना चाहिये; उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला देनी चाहिये। भगवान् ने उन्हें छाया रूप से या जैसे रखा वैसे वे रहीं। एक ब्राह्मण ने अपनी स्त्री को आने ही नहीं दिया, बाँधकर रख दिया। इससे वह इस पांचभौतिक शरीर को ही छोड़ गयी।

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इस विषय को विस्तार से सुनाइये। फिर भगवान् ने क्या किया यह भी सुनावें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज! अब आगे की कथा आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

ले व्यञ्जन चलि दई निहारे आगे नटवर।
छैल चिकनियाँ बने सजे शोभित अति सुखकर॥
द्विज-पतिनिनि लखि हँसे कहें-हे भामिनि आओ।
आई दरशन हेतु करे अब दरशन जाओ॥
सुनि अप्रिय अच्युत वचन, बोलीं तुम प्रिय शिरोमनि।
प्रथम बुलावत खींचिकें, दुतकारो पुनि कठिन बनि॥

द्विजपत्नियों का अनुपम प्रेम

(६४४)

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० २३ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

पुनि बोले घनश्याम-सुमुखि ! मखशाला जाओ ।
यज्ञ काज करि सतत चित्त मम चरन लगाओ ॥
हृदय हृदयतैं मिलै एकता मनके माहीं ।
अङ्गसङ्ग अनुराग प्रीतिको कारन नाहीं ॥
हरि आयसु सुनि मन तहाँ, धरि तनतैं मखमहँ गईं ।
दरश श्यामके पाइकैं, धन्य विप्र पत्नी भईं ॥

शरीर को बन्धन में डाल लेनेसे हृदय को बन्धनमें नहीं डाला जासकता। जब तक जीव अज्ञानवश शरीर को ही आत्मा-मानकर उसी के सुख में सुखी और उसी के दुःख में दुखी होता रहता है तब तक ही यह शरीर की चिन्ता करता है। जब वह शारीरिक स्थिति से ऊँचा उठ जाता है, अपने को देह से पृथक

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"मुनियो ! उन द्विजपत्नियों में से एक को उसके पति ने बल पूर्वक रोक लिया था। तब उसने भगवान् का स्वरूप जैसा सुना था। उसे ही हृदय में धारण करके कर्मके परिणामभूत अपने शरीर का परित्याग कर दिया ।"

अनुभव करता है, तो शरीर को वस्त्र की भाँति जब चाहे उतार कर फेंक दे। प्रेम का सम्बन्ध शरीर से न होकर मन से है। मन जिसमें रम गया उसका हो गया। अंतर इतना ही है, कि अनित्य वस्तुओं में मन स्थाई नहीं होता, टिकता नहीं। एक से दूसरे पर दौड़ता रहता है, किन्तु नित्य से प्रेम करने पर सदा के लिये उसी का हो जाता है। श्रीकृष्ण अपने निज लोक में निरन्तर प्रेम की ही क्रीड़ा किया करते हैं, वहाँ के समस्त उपकरण समस्त लीलायें नित्य हैं, चिन्मय हैं, अविनाशी हैं। कभी वे अपने नित्य परिकरके साथ अवनि पर अवतरित होकर यहाँ भी उन्हीं लीलाओं का अनुकरण करते हैं। बहुत से साधक सिद्ध भक्त जो उनसे मिलने को न जाने कब से छटपटा रहे हैं, उन्हें अपने में मिलाते हैं, उनके नाशवान् प्राकृत शरीर को दिव्य चिन्मय बनाकर अपने परिकर में प्रविष्ट कर लेते हैं उसका फिर आवागमन सदा के लिये छूट जाता है। उसका नित्य लीला में प्रवेश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन यज्ञीय विप्रों की पत्नियोंका प्रेम अलौकिक था। इनकी निष्ठा परिपूर्ण थी। ये कोई इधर उधर घूमने वाली स्वैरिणी तो थीं नहीं, कि जिसका सुन्दर रूप देखा रीझ गई। ये तो कुलवती सती साध्वी धर्म पत्नियाँ थीं। पूर्वजन्मों के संस्कारों से अनेक जन्म के सुकृतों से इनका अनुराग नन्दनन्दनके चरणारविन्दोंमें हो गया। किसी सन्तके मुखसे सुन लिया, कि साक्षात् परब्रह्म परमात्मा व्रजमें व्रजराज नन्दके यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। सुनते ही उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया। तर्क का अवसर ही न मिला, कि क्या ऐसा सम्भव हो सकता है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक अहीरों के यहाँ कैसे अवतरित होगा, ऐसे कुतर्क तो पूर्वजन्म के किन्हीं अंतरायों के कारण होते हैं; इनका अन्तःकरण तो जन्म से ही शुद्ध था। किन्तु प्रारब्ध वश उन्हें

पति ऐसे मिले, कि वे कर्मों को ही सब कुछ समझते थे, अभी तक उनके हृदय में भक्ति का अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ था। बीज तो उनके अन्तःकरण में था ही।

भक्ति का सम्बन्ध हृदय से होता है। किसी के अन्तःकरण में भक्ति है, दूसरे के में नहीं है, किन्तु वह उसका विरोध नहीं करता, तो दोनों में कोई कलह नहीं होती। जहाँ एक व्यक्ति अपने अधीन पुरुषों को बलपूर्वक अपनी बात मानने को विवश करता है, वहाँ कलह होती है और कभी कभी प्राणान्त तक की नौबत आ जाती है। हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी से बलपूर्वक अपनी बात मनवाना चाहता था। इसी पर कलह हुई हिरण्यकशिपु की मृत्यु हुई। मन से जो बात न मानी जाय, ऊपर से विवश करके ही हू कराई जाय, तो वह मान्यता चलती नहीं। जिनका मन मोहन की माधुरी में उलझा हुआ है, उन्हें शारीरिक बन्धन सुलझा नहीं सकते।

यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की पत्नियों ने एक बार श्यामसुन्दर के रूप की चर्चा सुनी थी, सुनते हैं, उनका चित्त उधर खिंच गया अब उठते बैठते, चलते फिरते, खाते पीते, उन्हीं का चिन्तन करती रहतीं उन्हीं के रूप का ध्यान धरती रहतीं, बैठतीं तो परस्पर में उन्हीं के सम्बन्ध की कथायें कहतीं उन्हीं के गुणों का गान करतीं। यज्ञ के समय उनकी साधना पूरी हुई। श्यामसुन्दर उन्हें दर्शन देने स्वतः ही पधारे। स्वयं ही उन्हें कृतार्थ करने भूखे बन कर पहुँचे और अपने अनन्याश्रित आत्मीय सखाओं द्वारा बुलवाया स्त्री कहीं भी आने जाने में धर्मशास्त्र के अनुसार स्वतंत्र नहीं है। बाल्यकाल में उसे पिता से पूछकर कार्य करना होता है। युवावस्था में पति के अधीन रहना पड़ता है और वृद्धावस्था में पुत्र के। इसके विपरीत वह स्वतन्त्र हो जाती है करने लगती है तो धर्मभ्रष्ट हो जाती है। सभी सांसारिक

में उसे सबकी सम्मति से ही कार्य करना पड़ता है, किन्तु भगवान् का सम्बन्ध हो और उसमें घर वाले रोड़े अटकावें तो, उसे विवश हो जाना पड़ता है।

भगवान् का आगमन सुनकर ये द्विजपत्नियाँ विवश हो गई उनके चरणोंमें जाने के लिये। घरवाले उन्हें रोक रहे थे, किन्तु वे रुकी नहीं। उन लोगों ने बहुत अधिक विरोध भी नहीं किया। वाणी से ही मना करते रहे, शारीरिक बल का प्रयोग नहीं किया। वे सब बड़ी सयानी थीं, पुत्रवती थीं। इस अवस्था में बल प्रयोग करना उचित नहीं होता है।

एक उनमें अत्यन्त क्रोधी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी तो सती साध्वी और भगवद्भक्ता थी। वह निरन्तर श्रीकृष्ण के रूप का ही चिन्तन करती रहती। साथ ही घर के कार्यों को भी करती रहती।

जिस दिन भगवान् पधारे और सब उसकी सखी सहेली थालों को सजा सजाकर उनके लिये भोजन ले जा रही थीं, उस दिन यह भी कृष्ण के समीप जाने को उद्यत हुई। उसने थाल में सब वस्तुएँ सजा लीं ऊपर से स्वच्छ सफेद वस्त्र भी ढक लिया। सोलह श्रृङ्गार करके वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत होकर, थाल उठाकर वह ज्यों ही चली, त्यों ही उसका पति आ गया। उसने अभी तक भोजन नहीं किया था। एक तो वह स्वभाव से ही क्रोधी था, दूसरे भूख में क्रोध और भी अधिक बढ़ जाता है। उसने पूछा—"आज सज बजकर कहाँ की तैयारियाँ हो रही हैं ?"

उसने सरलता के साथ कहा—"यहाँ समीप में ही सखाओं के सहित श्यामसुन्दर आये हैं। मेरी सब सखी सहेलियाँ वहीं जा रही हैं मैं भी उनके दर्शन कर आऊँ।"

उसने क्रोध में भर कर कहा—"कौन श्यामसुन्दर, वह नन्द अहीर का छोकरा! हाँ, लोग उसे भगवान् भगवान् तो कहते हैं,

किन्तु मैं उसे नहीं मानता।"

सरलता के साथ उसकी धर्म-पत्नी ने कहा—"आप न मानें यह दूसरी बात है, किन्तु मुझे दर्शनों से क्यों रोकते हैं। मैं सबके साथ जाऊँगी। सबके साथ दर्शन करके लौट आऊँगी।"

उस ब्राह्मण ने कहा—"स्त्रियों को पर पुरुष को देखना पाप है। फिर अभी मैंने भोजन भी तो नहीं किया। बिना मुझे भोजन कराये तू कैसे जायेगी?"

उसने कहा—"श्रीकृष्ण परपुरुष नहीं हैं वे तो परात्पर पुरुष हैं, सबके आत्मा हैं, सबके पति हैं। भोजन मैं परसे देती हूँ। आप भोजन कर लें, मेरी सहेली तैयार होकर बाहर खड़ी है। मैं पिछड़ जाऊँगी। आप कृपा करो, मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करो।"

उस क्रोधी ब्राह्मण ने क्रोध में भरकर कहा—"नहीं, मैं आज्ञा कभी नहीं दे सकता। मैं तुझे कदापि वहाँ न जाने दूँगा। और सब जाती हैं तो जायँ, तू नहीं जा सकती।"

इसने दृढ़ता के स्वर में कहा—"श्यामसुन्दर के दर्शनों को तो मैं अवश्य जाऊँगी, अवश्य जाऊँगी किसी के रोकने से भी न रुकूँगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक तू किसी भी प्रकार नहीं जा सकती। मैं औरों की भाँति कहकर ही रुक जाने वाला नहीं। मैं करके दिखा दूँगा। तुझे बाँधकर डाल दूँगा।"

स्त्री ने गंभीरता पूर्वक कहा—"स्वामिन्! मिलन तो आत्मा से होता है; आत्मा इन जंजीर और रस्सियों के बन्धन से परे है। आप मेरे शरीर को बाँध सकते हैं। आत्मा को तो आप बाँध ही नहीं सकते। उसी से मैं जाकर मिल जाऊँगी।"

इसने क्रोध में भरकर कहा—"अच्छी बात है, देखें तू कैसे

जाकर मिलती है।" यह कहकर उसने बलपूर्वक अपनी पत्नी को पकड़ कर एक रस्सी से उसके हाथ पैर बाँधकर एक कुटी के खंभे में रस्सी बाँध दी और बाहर से ताला लगा दिया।"

शरीर बँध जाने पर उसकी आत्मा श्रीकृष्ण में ही लग गई। वह बार बार सोचने लगी—'हाय! मेरी सखी सहेलियाँ ही बड़ी भाग्यशालिनी हैं जो नन्दनन्दन के चरणों का स्पर्श करेंगी। मैं अभागिनी उन तक न पहुँच सकी।' इस प्रकार उसके हृदय की पश्चात्ताप रूपी अग्नि तीव्र हो उठी। उसने भगवान् का जैसा रूप सुना था उसी को हृदय में धारण करके ध्यान में निमग्न हो गई यह शरीर तो प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त होता है, श्रीकृष्ण के ध्यान से समस्त संचित, प्रारब्ध और क्रियमाणकर्म उसके समाप्त हो गये। कर्मों का बन्धन समाप्त होने पर यह शरीर टिक ही नहीं सकता क्योंकि शरीर तो कर्मों का परिणाम है। तुरन्त उसके प्राण शरीर को छोड़कर सबसे पहिले जाकर श्रीकृष्ण से मिल गये। उसका पांच भौतिक मृतक शरीर यहाँ पड़ा रह गया। श्रीकृष्ण को और उनके प्यारे सखाओं को अपने हाथ के भोजन कराने की कामना उसकी रह गई। उसे भगवान् ने उसके प्रतिबिम्ब से कभी अवश्य ही पूरा किया होगा। उसका बिम्ब श्याम सुन्दर के नित्य परिकरमें मिल गया। वह उनकी किंकरी बन गई। सबसे पहिले वही अपनी सूक्ष्म आत्मा से श्यामसुन्दर से मिली। तदनन्तर अन्य द्विजपत्नियाँ भोजन लेकर पहुँची।

श्रीकृष्ण ने भोजन लेकर सब द्विज पत्नियों को पुनः यज्ञ-शाला में लौटा दिया और आपने कहा—"आओ! सारे ओ! अब उड़ाओ माल! तब से तुम भूख भूख चिल्ला रहे थे।"

गोपों ने कहा—कनुआ भैया! सच्ची कहते हैं, हम तेरे डर के कारण अब तक नहीं बोले थे, नहीं तो तू इन पंडितानियों से

बातें कर रहा था—हमारा हृदय धुकुर धुकुर कर रहा था हे भगवान् ! कब ये यहाँ से टलें और कब हम भर पेट भात उड़ावें लड्डुओं को सटकें हलुए को गटकें और रबड़ी पीपीकर कुल्लड़ों को पटकें।"

भगवान् बोले—"मैं क्या ! इस बात को जानता नहीं था ? मैं तुम्हारे मन की बात जान गया, इसीलिये उनको तुरन्त बिदाकर दिया। अब देरी करने का काम नहीं है। आ जाओ और गोल पंक्ति लगाकर बैठ जाओ।"

गोप तो इसके लिये लालायित ही बैठे थे तुरन्त बैठ गये। भगवान् परसने लगे, पूरा परसने भी नहीं पाये कि गोप बोले—"भैया, अब हमसे तो रहा नहीं जाता, तू परसते रहना। जिसपर जो आ जाय वही चढ़ाओ, सब खाने लगे। भगवान् बड़े प्रेम से उदारता पूर्वक परसने वाले बन गये, उन्हें कमी किस बात की रह सकती है। इस प्रकार सभी ने अत्यन्त स्वादिष्ट सभी भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य इन चार प्रकार के पदार्थों को, पेट भर के पाया। जब उनका पेट कंठ तक भर गया। उठने की सामर्थ्य न रहीं तो उन्होंने कहा—"कनुआ भैया ! अब पेट भर गया। पत्तल पीछे फेंकेंगे हम तो यहीं लेटते हैं।" यह कहकर सब गोप वहीं लेट गये।

भगवान् हँस पड़े और बोले—"अरे, सारे ओ ! अन्न तो पराया था, पेट भी पराया था क्या ? इतना क्यों खाये।" यह कहकर जो कुछ बचा कुचा अन्न था, उसे भगवान् ने स्वयं पाया। भक्त तो पहिले भगवान् को पवाकर तब प्रसाद पाते हैं और भगवान् पहिले भक्तों को पवाकर उनके शेष बचे प्रसादी को पाते हैं। भक्त और भगवान् की ऐसी लीलायें अनादि काल से होती आई हैं और अनन्त काल तक होती रहेंगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार आनन्दकन्द ब्रज-

जीवन धन श्रीश्यामसुन्दर माया से मानव–रूप धारण करके वृन्दावन में मनुष्यों जैसे खेल करते रहते थे। देखने में तो वे मनुष्योंके से बालक दिखाई देते थे, किन्तु उनके चरित्र सभी अद्भुत और अलौकिक थे। उनके रूप में इतना अधिक आकर्षण था, कि चर अचर सभी उसे देखकर विमुग्ध बन जाते, उनकी वाणी इतनी मधुर थी, कि जो एक बार सुन लेता वह उनका क्रीत दास बन जाता, सदा के लिये उनके हाथों बिक जाता। उनके कर्म इतने सरस और अनुपम थे, कि उन्हें देखते देखते नेत्र तृप्त नहीं होते थे, सुनते सुनते कान नहीं अघाते थे। ब्रज में रहकर वे निरन्तर गोप गोपी तथा गौओं को आनन्दित करते रहते थे। उन्होंने अपनी लीला से द्विजपत्नियों को भी कृतार्थ किया। उन्हें अपने दर्शन भी दिये और उनके सम्बन्धियों से भी विग्रह न होने दी।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! उन स्त्रियों के पति तथा अन्यान्य सम्बन्धी क्रुद्ध क्यों नहीं हुए। उन सबने तो उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया था।"

सूतजी बोले—"महाराज! जिसपर श्यामसुन्दर की कृपा हो जाती है, उसपर सभी कृपा करते हैं। जिसके अनुकूल नन्दनन्दन हैं, उसके प्रतिकूल कोई हो ही कैसे सकता है। इन स्त्रियों के जाने से वे इनपर प्रसन्न ही नहीं हुए अपितु वे सबके सब भी भक्त बन गये। उन्हें अपने कृत्य पर दुःख हुआ। उन्हें अपनी भक्ति हीनता पर बड़ा पश्चाताप हुआ।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! पापकी पश्चाताप से बढ़कर दूसरी कोई औषधि नहीं। यदि अपने कुकृत्य पर हृदय से सच्चा पश्चाताप हो जाय, तब तो सब बेड़ा पार ही हो जाय। उन याज्ञिकविप्रोंको कैसे पश्चाताप हुआ और पश्चातापमें उनके हृदय

से कैसे उद्‌गार निकले, कृपा करके इस प्रसङ्गों को हमें और सुनाइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज! अब मैं उन याज्ञिक विप्रों की पश्चात्ताप की ही कथा सुनाता हूँ, आप इस प्रसङ्ग को समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

एक जाइ नहिं सकी रोकि निज पतिने लीन्हीं।
करि तैयारी चली बाँधि रस्सीतें दीन्हीं॥
दरशनमहँ व्यवधान परयो अतिशय घबराई।
श्यामरूप हिय धारि त्यागि तनु स्वर्ग सिधाई॥
मन मनमोहनके निकट, तन मखशालामहँ परयो।
प्रेम प्रबलताने यहाँ, अति अद्‌भुत कौतुक करयो॥

याज्ञिक विप्रोंका पश्चात्ताप

(६४५)

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः।
यद् विश्वेश्वरयोर्याञ्चामहन्म नृविडम्बयोः॥
दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम्।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन्॥❀
(श्री भा० १० स्क० २३ अ० ३७, ३८ श्लो०)

छप्पय

इत सब आइँ लौटि द्विजनि अति प्रेम दिखायो।
यज्ञकाज लै संग पूर्ण विधि सहित करायो॥
विप्रनि को हू हृदय शुद्ध हरिने करि दीन्हों।
सबने पश्चाताप कृत्य अपनेपै कीन्हों॥
ये अबला ई धन्य हैं, हाय ? अभागे हम रहे।
आये प्रभु पूजे नहीं, कठिन वचन उलटे कहे॥

अपराध करना—भूल करना—यह जीव का स्वभाव है। जो अपने बनावटी स्वभावसे ऊपर के चाकचिक्य से अपने को दूधका

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इधर जब उन यज्ञ करने वाले विप्रों ने यह अनुभव किया कि हमने मनुष्यरूपधारी दोनों जगदीश्वरोंकी याचना का अनादर करके बड़ा अपराध किया है, तो उन्हें बड़ा

झुला सिद्ध करते हैं। जो अपने पापों को छिपाने को झूठ बोलकर पाप के ऊपर पाप करते हैं। अपनी भूल को घुमा फिर—कर सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, उनका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है। सुधार का श्रीगणेश पाप की स्वीकृति में है। संसार में पाप किससे नहीं होता। जो पाप पुण्य से रहित प्रभु हैं, उनकी बात तो छोड़ दो, वे तो कुछ करते ही नहीं। किन्तु जिसने कर्मानुसार शरीर धारण किया है, उससे पाप भी होंगे. पाप करके जो उन्हें अनेक प्रकार के दम्भ करके छिपाते हैं, मानों वे पापों को कृपण के धनकी भाँति एकत्रित करते हैं। आगे सर्प होकर वे पापों की रक्षा करेंगे और नरक की यातनायें सहेंगे। भूलसे या प्रमाद से पाप हो गया और करने के अनन्तर उसके लिये हृदय से पश्चात्ताप हो, तो यह आशा की जाती है, कि पश्चात्ताप की अग्नि से पापों के पुंज अवश्य ही भस्म हो जायँगे।

पश्चात्ताप से भीतर का जितना कूड़ा करकट होता है वह सब जलकर भस्म हो जाता है, हृदय विशुद्ध बन जाता है। इसलिये पाप हो जाना यह कोई उतनी बुरी बात नहीं है सबसे बुरी बात तो यह है कि पापको छिपाये रखना और ऊपर से ऐसी चेष्टा करना मानों हमने तो कुछ किया ही नहीं। समझलो कि इनकी पाप में आसक्ति हो गई है। अतः हृदय में पश्चात्ताप होना यह भगवान् की बड़ी कृपा है। यह बिना भक्तों के संपर्क के बिना सत्संग के-नहीं होता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वे विप्रपत्नियाँ लौटकर यज्ञशाला में आ गईं। पतियों के सहित समस्त कार्य किये। वे तो

पश्चात्ताप हुआ। अपनी स्त्रियों में भगवान् की अलौकिक भक्ति देखकर तथा अपने को उससे हीन समझकर वे पछताते हुए अपने आपही अपनी निन्दा करने लगे।"

भगवद् दर्शन करके कृतार्थ हो चुकी थीं। कृतार्थ हुए पुरुष से जो सम्बन्ध रखता है, वह भी कृतार्थ हो जाता है। उनके सम्पर्क से ब्राह्मणों को भी ज्ञान हो गया। अब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। वे सोचने लगे—"हाय! हमने यह कैसा पाप किया। दोनों राम कृष्ण तो साक्षात् जगदीश्वर हैं। मनुष्य रूप रखकर पृथिवी पर लीलाकर रहे हैं। हाय! हमने उनके मँगवाने पर एक मुट्ठी अन्न भी नहीं दिया। उनकी आज्ञा की अवहेलना कर दी। उनकी याचना का अनादर किया। देखो, हमारी ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। पूर्वजन्म में इन्होंने ऐसे कौनसे पुण्य कर्म किये हैं, जिसके द्वारा इनकी भगवान् में ऐसी अलौकिक भक्ति उत्पन्न हो गई। हम तो वैसे ही मूढ़ रहे। ये हमारी स्त्रियाँ जगद्पूज्य बन गईं।

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! ये याज्ञिक द्विजों की पत्नियाँ पूर्वजन्म में कौन थीं इनको भगवान् में ऐसी स्वाभाविकी प्रीति कैसे हुई?"

शौनकजी बोले—"महाराज! सत्संग में प्रेम, साधुसन्तों के चरणों में अनुराग, शुभकर्मों में प्रवृत्ति, तथा भगवान् में भक्ति होना कोटिजन्मों तक पुण्य क्रियायें करने के अनन्तर शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगों के हृदय में ही ये सब होती हैं। कोई ऐसा अन्तराय आ जाता है, कि पुनर्जन्म लेना पड़ता है, उसमें कुछ पाप कर्म भी बन जाते हैं। इससे और अधिक पश्चात्ताप होता है, भगवान् में भक्ति अधिक बढ़ती है। ये विप्र-पत्नियाँ पूर्व जन्म में बड़ी तपस्विनी थीं। सप्तर्षियों की पत्नियाँ थीं, एक अपराध से इन्हें जन्म लेना पड़ा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! वह कौन-सा अपराध बन गया। उसे भी हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—"भगवन्! एक बार समस्त सप्तर्षि मिलकर

एक यज्ञ कर रहे थे, उसके समीप ही उनकी गुणवती, सुशीला, धर्म परायण पत्नियाँ वस्त्रालंकारों से अलंकृत हुई बैठीं थी। वे सबकी सब सुन्दरी थी, तपाये हुये सुवर्ण के समान उनके शरीर का वर्ण था। अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्र वे पहिने थीं उनके मुख की कान्ति सैकड़ों शारदीय चन्द्रों को तिरस्कृत करने वाली थी। वे सुवर्ण आभूषणों के पहिने प्रसन्नचित्त से अपने अपने पतियों के निकट बैठी थी। उनके ऐसे दिव्य रूप को देखकर अग्निदेव उन पर मोहित हो गये। वे बार बार अपनी शिखाओं से उनके अङ्गों को स्पर्श करने लगे। उस देव के स्पर्श से उन स्त्रियों के चित्त में चंचलता होनी स्वाभाविक थी। उनका मुख भी लाल पड़ गया, आँखे चमकने लगीं अंगों में कंप होने लगी, और अंग भी शिथिल से होने लगे, किन्तु वे समझ न सकीं हमारी ऐसी दशा क्यों हो रही है।

उस कल्प में अङ्गिरा मुनि भी सप्तर्षियों में से थे। क्योंकि सप्तर्षि तो प्रत्येक कल्प में बदलते रहते हैं। अङ्गिरा मुनि अग्नि के भाव को ताड़ गये। उसके काम भाव को समझ गये उन्होंने शाप दिया—"अग्निदेव! इतने भारी देवता होकर तुमने यज्ञ के समय ऐसी कुचेष्टा की है, तुम सर्वभक्षी हो जाओ।"

अग्नि को शाप देकर वे पत्नियों को देखकर बोले—"यज्ञ के समय तुम्हारी ऐसी काम युक्त चेष्टा हो गई अतः जाओ तुम पृथिवी पर मानुषी योनि में उत्पन्न हो और हमारे वंश वाले याज्ञिक ब्राह्मण तुम्हें ग्रहण करेंगे। उनकी तुम पत्नी बन जाओगी।"

मुनि को क्रुद्ध होते देखकर उन मुनिपत्नियों ने भूमि में सिर टेककर उन्हें प्रणाम किया और रोते रोते बोलीं—"मुनिवर! इसमें हमारा तो कोई अपराध नहीं था। हम तो जानती भी नहीं थी, अग्निदेव का हमारे प्रति ऐसा भाव है, फिर आपने

दारुण शाप हमें क्यों दिया ? स्त्रियों के लिये प्राणपति से वियोग होना मृत्यु से भी बढ़कर है। स्त्रियाँ दूसरे के भय से स्वामी की शरण में जाती हैं यदि उनका स्वामी ही क्रुद्ध हो जाय, तो किसकी शरण जायँ ? इसलिये आप हम पर कृपा करें।"

यह सुनकर महामुनि अङ्गिरा बोले—"देखो, स्त्रियाँ जब अत्यन्त काम पीड़िता हो जाती हैं, तो उनके अङ्ग अशुद्ध हो जाते हैं, वे देव पितृ कार्य की अधिकारिणी नहीं रह जाती इसलिए तुम हमारे साथ अब यज्ञ करने की अधिकारिणी रहीं नहीं।"

मुनि पत्नियों ने कहा—"हमने जान बूझ के तो ऐसा किया नहीं है। जो स्त्री जान बूझकर पर पुरुष से संपर्क करती है वह नरक गामिनी होती है। हमारे बिना जाने अग्नि ने ऐसी कुचेष्टा करदी। भगवान् ! महामुनि गौतम की पत्नी के साथ इन्द्र ने छल किया था। उसे भी पुनः अपने पति की प्राप्ति हो गई। आपका वचन असत्य तो होगा नहीं, आपकी प्राप्ति हमें कब होगी ?"

यह सुनकर और सबका पति में प्रेम देखकर मुनि को भी दया आ गई और वे भी, रोने लगे। उन्होंने कहा—"देवियों ! संसार में न कोई किसी पर अनुग्रहकर सकता है, न शाप दे सकता है। ये सब तो पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुसार प्रारब्ध के वश होता है, ऐसा प्रतीत होता है, हमारा तुम्हारा इतने ही दिन का संस्कार था। संस्कार समाप्त होने पर कोई किसी के साथ रह ही नहीं सकता। किया हुआ कर्म बिना भोगे समाप्त होता ही नहीं। कर्मों के भोग तो भोगने ही होंगे। अब तुम्हारे साथ सम्बन्ध रखना हमारा धर्म नहीं है।

दीनता के स्वर में मुनि पत्नियों ने कहा—"भगवन् ! हमने तो कोई पाप किया नहीं।"

मुनि ने कहा—"तुमने न किया हो, तुम्हारे प्रारब्ध से हो गया हो। दूसरों के द्वारा भुक्त स्त्री को जो पति अपने पास रखता है, वह नरक गामी होता है। ऐसी स्त्री के हाथ के हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते, कव्य को पितर ग्रहण नहीं करते। इसीलिये शास्त्रकार भोजन बनाने की हन्डी की ओर यज्ञ में साथ बैठने वाली धर्मपत्नी की बड़े यत्न से रक्षा करते हैं। ये दोनों वस्तुएँ दूसरे के द्वारा छूई जाने पर अशुद्ध हो जाती हैं। अपने द्वारा छूने पर विशुद्ध बनी रहती हैं। अतः अब तुम्हें पृथिवी पर जन्म लेना ही होगा।"

इस पर उदास होकर मुनि पत्नियों ने कहा—"तब प्रभो! हमारे उद्धार का उपाय बताइये।"

इस पर अङ्गिरा मुनि बोले—"तुम्हारा जाकर व्रजमण्डल में जन्म होगा, तुम याज्ञिक विप्रों की पत्नी बनोगी। वहाँ श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से ही तुम गो लोक की अधिकारिणी बन जाओगी।"

मुनि पत्नियाँ बोलीं—"भगवान्! आप तो कहते हैं वासनाओं का अन्त भोग से होता है। हमारे मन में अभी आपको पाने की वासना बनी हुई है वह कैसे पूरी होगी।

मुनि बोले—"तुम अपने बिम्ब रूप से तो गो लोक की अधिकारिणी बन जाओगी, किन्तु भगवान् तुम्हारी एक छाया बनाकर ब्राह्मणों के पास भेज देंगे, उसी से तुम उनकी पत्नी बनी रहोगी और उसी के अंश से आकर फिर हमारी पत्नी बनोगी।"

यह सुनकर वे दुखी हुईं, वे ही आकर ये यज्ञ पत्नियाँ हुईं।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उन मुनि पत्नियों का कोई दोष तो था नहीं, फिर भी मुनि ने उन्हें शाप क्यों दिया?"

इस पर शीघ्रता के साथ सूतजी बोले—"महाराज! यह शाप कहाँ था, यह तो अनुग्रह थी। वहाँ यज्ञ का धूँआ सूँघते सूँघते ही मर जातीं। भगवान् की प्राप्ति न होती। यहाँ तो भगवान् के दर्शन मात्र से ही वे गोलोक की अधिकारिणी हुई। भगवान् जो करते हैं। सब मङ्गल ही करते हैं यही सोचकर शक्ति भर विषयों के प्रलोभन से बचकर निरन्तर कथा कीर्तन में ही अपने समय को व्यतीत करे। जो अपने को श्रीकृष्ण के लिये समर्पित कर देगा, भगवान् उस पर कभी न कभी अवश्य ही कृपा करेंगे। भक्तों का संग कभी निष्फल नहीं जाता। उसका कभी न कभी सुपरिणाम अवश्य होता है। देखिये, ये विप्र पत्नियाँ कितने दिनों से इन ब्राह्मणों के साथ थीं। इनके साथ रहते रहते इनके बाल बच्चे हुए इनके साथ कितने यज्ञ याग किये, फिर भी ये शुष्क कर्मठ के कर्मठ बने रहे और ये निरन्तर श्रीकृष्ण की लीलाओं के चिन्तन में उनके यथाश्रुत रूप के ध्यान में ही निमग्न बनी रहीं। अन्त में इन्हें भगवान् के दर्शन हुए। भगवद् दर्शन पाकर जब ये कृतार्थ हो गईं, तो इनके संसर्ग से इनके पतियों को भी अपने पूर्व के अपराधों के लिये पश्चात्ताप हुआ।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ सूतजी! क्या परचात्ताप हुआ। यही सुनाइये यह कथा तो बीच में प्रसंगवश आ गई।"

सूतजी बोले—"महाराज! ये याज्ञिक-ब्राह्मण यज्ञ समाप्त करने के अनन्तर परस्पर में बैठकर सोचने लगे—"हाय! हम अपनेको सब वर्णों में श्रेष्ठ समझते थे। हमारी धारणा थी हम द्विजन्मा ही नहीं त्रिजन्मा हैं। माताके गर्भसे जन्मना और गायत्री उपदेश को ग्रहण करना ये दो जन्म तो द्विजों के प्रसिद्ध ही हैं। यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोंका एक दैव जन्म तीसरा होता है जिसमें ये बड़े यज्ञों की दीक्षा ली जाती है। हमारे तीन जन्म होने पर भी भगवद् भक्ति से शून्य होने के कारण ये सब व्यर्थ बन गये।

जो विद्या नन्दनन्दन के चरणारविन्दों में अनुराग उत्पन्न न कर सके वह विद्या विद्या नहीं, अविद्या है। इसीलिये भक्ति शून्य होने के कारण हमारी विद्या भी व्यर्थ बन गई। हमने जो इतने दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, वह भी भक्ति हीन होने से केवल दम्भ मात्र ही सिद्ध हुआ। हमने जो इतने कृच्छ्र चन्द्रायणादि व्रत किये वे भी भक्ति के बिना केवल शरीर सुखाने के श्रम मात्र ही सिद्ध हुए। हम समझते थे हम ज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञानी न होकर ज्ञान मानी ही निकले, अज्ञानी के सदृश हमारा आचरण हुआ।"

इस पर एक वृद्ध से विप्र बोले—"भैया! इसमें हमारा अपराध भी क्या है। करने कराने वाले तो वे श्रीहरी ही हैं। जब वे जिससे जो कराना चाहते हैं, उसे वह कार्य विवश होकर करना पड़ता है, किसी का वश नहीं चलता। अच्छे अच्छे ज्ञानी चौकड़ी भूल जाते हैं। चिरकाल तक, जप, अनुष्ठान, मौन ब्रह्मचर्य, साधन, भजन करने पर भी लोग फिसल जाते हैं, उनके भाव दूषित हो जाते हैं। यह भगवान् की गुणमयी दैवी माया इतनी प्रबल है, कि बड़े बड़े योगियों के मन को भी मथन कर डालती है। नहीं तो देखो हमारा जन्म विशुद्ध ब्राह्मण कुल में हुआ है, सदा से सदाचार का पालन करते आये हैं। यथा शक्ति वेदपाठ, जप, यज्ञ, परोपकार भी करते हैं। सब वर्णों के गुरु हैं, सभी हमारा विद्वान् समझकर आदर करते हैं। फिर भी हम भगवान् की माया में मोहित हो गये। अपने अभिमान के वशीभूत होकर अपने परम स्वार्थ को भूल गये।" भगवान् हमारे समीप आये फिर भी उनमें हमारा अनुराग ही नहीं हुआ।"

इस पर एक अन्य ब्राह्मण बोला—"भैया! हम लोग तो अभिमान में ही मर गये। दश आदमियों ने पंडितजी पंडितजी

कहा, पैर छूए फूलकर कुप्पा हो गये। समझने लगे हम सबसे बड़े हैं। जिन स्त्रियों को हम अपने अधीन समझते थे, हमसे तो ये लाखगुनी अच्छी हैं। इनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ। इन्होंने गुरुकुल में वास करके हवन, वेदाध्ययन, तथा गुरुसुश्रुषा आदि शुभकर्म भी नहीं किये। इन्होंने कृच्छ्र चान्द्रायणादि तप भी नहीं किये, शरीर को भी नहीं सुखाया। इन्होंने आत्मतत्त्व की खोज के लिये शास्त्रों का ऊहा पोह भी नहीं किया। इनमें कोई बड़ी भारी पवित्रता होती हो सो भी बात नहीं। स्त्री के लिये शास्त्रों में भी पुरुषों की अपेक्षा शौच के आधे नियम बताये हैं। उसका भी ये पालन नहीं करती, इनके अंगों की बनावट ही ऐसी है, कि शौच के नियम पालन ही नहीं हो सकते, अपवित्र जलादि से इनके अंग भीगे ही रहते हैं। पतियों के साथ में जो शुभ कर्म करले उन्हीं में इनका भाग होता है, नहीं तो इनकी प्रवृत्ति सांसारिक कार्यों में ही अधिक होती है इतना सब होने पर भी इनका जगद्गुरु परात्पर प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में इतना अनुपम अनुराग हो गया ये ही धन्य हैं, हम इस मान प्रतिष्ठा और स्वर्ग के लोभ में ही फँस गये। जीव का चरम लक्ष्य भगवत् प्राप्ति जो इससे वञ्चित रह गया वह मानों जान बूझकर, मृत्यु के मुख में घुस गया। जिसने नन्दनन्दन के चरणारविन्दों में चित्त को लगा दिया वह मृत्यु के पाशरुप गार्हस्थ्य सम्बन्ध को तोड़कर संसार बन्धन से विमुक्त बन गया। यह अत्यन्त दुःख, आश्चर्य, खेद और लज्जा की बात है इन संस्कार हीन हमारी स्त्रियों की योगेश्वरों के भी ईश्वर पुण्य श्लोक भगवान् वासुदेव में ऐसी सुदृढ़ भक्ति है और हम संस्कारादि से युक्त होने पर भी कोरे के कोरे ही रह गये। हमारा हृदय प्रभु प्रेम से शून्य ही बना रहा। हम भगवद् भक्ति से वंचित ही रहे। देखो, हमसे भगवान् ने भूख के कारण मुट्ठी भर अन्न मांगा, वह भी हमने लोभ

चश नहीं दिया।"

इस पर एक अत्यन्त भावुक विप्र रोते रोते बोला—"अरे, भैया! भगवान् ने याचना नहीं की। उन आप्तकाम प्रभु को भला याचना की क्या आवश्यकता पड़ी थी। जो विश्व को खाने को देता है, उसे भूख क्या कष्ट दे सकती है। यह तो भगवान् ने हमारे ऊपर कृपा की। हमें सचेत करने को यह लीला रची। हम लोग अपने यथार्थ स्वार्थ को भूलकर इन नाशवान सातिशय आदि दोषों से युक्त स्वर्गीय सुखों को ही सब कुछ समझकर उनके लिये सतत प्रयत्न करते रहते थे। गृहस्थ के सुखों में उन्मत्त होकर वे सब हमें स्वर्ग में भी प्राप्त हों इसके लिए चिन्तित होकर यज्ञ दान आदि कर रहे थे। सज्जनों के एक मात्र गति नन्दनन्दन ने गोपों को भेज कर हमारी मोहनिद्रा भंग की हमें गृहस्थ सुख से आगे भी कोई वस्तु है, यह सोचने का अवसर दिया। नहीं तो जो स्वयं पूर्ण काम हैं, जो स्वयं ही चराचर जीवों की इच्छित कैवल्यादि कामनाओं को भी देने वाले हैं। जो वांच्छा कल्पतरु कहाते हैं उन ईश्वरों के ईश्वर वृन्दावन विहारी को हम भक्तों से क्या लेना था? इसी मिससे उन्होंने हमें सावधान करने को ही यह सब कुछ किया।"

इस पर आश्चर्य चकित होकर एक वृद्ध ब्राह्मण जो यज्ञ के आचार्य थे वे बोले—"हाँ, भैया! सत्य कहते हो यही बात है। इस लक्ष्मी को अत्यन्त चंचला कहा जाता है। जिसकी छाया की तनिक सी कृपा के लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते हैं। वह मूर्तिमती साक्षात् लक्ष्मी अपनी चंचलता तथा अहंता आदि अवगुणों को त्यागकर निरन्तर जिनके पैरों को पलोटती रहती हैं, उन पूर्ण काम प्रभु की अन्न की याचाना हम लोगों को मोहित करने के लिये थी। हमारे मन को अपनी ओर खींचने के ही लिये यह लीला थी। हमने वेदों में यह बात सुनी भी थी कि नंद

नन्दन के ही यज्ञ, देशकाल, समस्त द्रव्य, मन्त्र, तन्त्र ऋत्विज अग्नि, देवता यजमान तथा धर्म ये सब रूप हैं। वे चराचर विश्व के स्वामी है, ये धर्म संस्थापनार्थ अवनिपर अवतार धारण करते हैं। आजकल वे यदुकुल में अवतीर्ण हो भी चुके हैं। ये सब जान बूझकर भी हम अनजान बन गये। भ्रम हो गया, कि जो एक मुट्ठी अन्न की याचना करता है वह क्या अवतार होगा? हाय! हमारी कैसी कुबुद्धि हो गई।"

यह सुनकर एक याज्ञिक बोला—"अरे, भाई! जो हुआ सो हुआ। हम सब भगवान् की माया में भटक रहे हैं। उन्होंने ही हमारी बुद्धि को ऐसा बना दिया। इसीलिये हम पर ऐसा अपराध बन गया। फिर भी हम बड़े बड़भागी हैं, हम भक्त नहीं तो हमारी अर्धाङ्गिनी तो भगवान् की भक्त हैं। हम उनके ही संसर्ग से पार हो जायेंगे। देखो उन्हीं के अनुग्रह का यह फल है कि हमारी बुद्धि भी उनकी भक्ति के प्रभाव से भगवान् नन्द नन्दन में निश्चल हो गयी है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार वे याज्ञिक सच्चे हृदय से अपने अपराध के प्रति पश्चात्ताप प्रकट करते हुए सब मिलकर बार बार भगवान् के पाद पद्मों में प्रणाम करने लगे और अपने अपराध के लिए क्षमा याचना करते हुए सब मिलकर कहने लगे—"जिनकी मोहिनी माया से मोहित होकर हम मन्द मति कर्म मार्ग में इधर से उधर भटक रहे हैं ऐसे अकुण्ठ बुद्धि वाले भगवान नन्द नन्दन के चरणारविन्दों में हमारी नमस्कार है। वे भगवान अपनी माया से मोहित हम अज्ञ नाम मात्र के द्विजो पर प्रसन्न हो, हम अज्ञानियों के अपराध को क्षमा करें। हम उनके चरणों में प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार सबने मिलकर भगवान् से क्षमा याचना की।

इस पर एक ने कहा— भैया, सब लोग चलकर भगवान् के

दर्शन करो, उनके समीप जाकर ही अपने अपराध की क्षमा याचना करो।"

इस पर एक वृद्ध से ब्राह्मण बोले—"देखो, भाई! भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे घट घट की जानते हैं। यह कंस बड़ा दुष्ट है, हम इसकी नगरी में रहते हैं। यह दुष्ट भगवान् को मरवाने के लिये उद्योग कर रहा है। उन्हें तो क्या मरवा सकेगा स्वयं ही मारा जायगा किन्तु इस समय हमारा जाना उचित नहीं। लोग भाँति भाँति की शंका करेंगे। किसी ने जाकर उस दुष्ट से कह दिया, तो एक नया झंझट होगा, स्त्रियों की बात दूसरी है। इस समय जाना उचित नहीं, फिर कभी भगवान् कृपा करेंगे तो दर्शन होंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान् के दर्शनों की इच्छा होने पर भी वे कंस के भय से वहाँ न जा सके। यज्ञ समाप्त करके वे मथुरा को लौट गये। भगवान् भी ग्वाल बालों को साथ लिये हुए सायंकाल समझकर वृन्दावन को चले गये। अब जैसे भगवान् ने इन्द्र के गर्व को हरण किया। उस लीलाका वर्णन मैं करूँगा।"

छप्पय

करुना सागर कृष्ण कबहुँ तो कृपा करिंगे।
मलिन वासना दुःख शोक आसक्ति हरिंगे॥
माया मोहित जीव करम मारग महँ भटकैं।
छुद्र स्वर्ग सुख हेतु अनल महँ सिर नित पटकैं॥
नदनदन हम अधम अति, अधम उधारन नाथ तुम।
करहु छिमा अपराध प्रभु! तव चरननि की शरन हम॥

गोपों का इन्द्रयाग के लिये उद्यम

(६४६)

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥❀

(श्री० भा० १० स्क० २४ अ० १ श्लो०)

छप्पय

दै द्विजपत्निनि दरश दयानिधि ब्रज पुनि आये।
बसि वृन्दावन नंद-नँदन बहु चरित दिखाये॥
एक दिवस हरि लखे गोप इततें उत जावें।
जौ तिल चाँवर घीउ, सबहिँ घर धरतैं लावैं॥
बाबा! का उत्सव करो, प्रभु पूछें ब्रजराजतें।
धूम धाम अति मचि रही, होवेगो का आजतें॥

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज की शोभा उत्सव से है। मनुष्य की उत्सवों में स्वाभाविक रुचि रहती है। एक-सी परिस्थितिमें या तो पशु रह सकते हैं, या अति उच्च कोटि के ज्ञानी महापुरुष। साधारण लोगों को कुछ परिवर्तन चाहिये।

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! वृन्दावन में जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी के साथ वास करते थे, तब उन्होंने एक दिन समस्त गोपों को इन्द्रयाग के लिये सामग्री जुटाने में व्यस्त देखा।"

कुछ उत्सव, धूम धाम, नाच गान चहल पहल चाहिये। उत्सवों में सभी सगे सम्बन्धी इष्ट मित्र तथा प्रेमी एकत्रित होते हैं। सबसे मिलना जुलना हो जाता है। सब मिलकर देव-पूजन करते हैं। साथ साथ बैठकर प्रसाद पाते हैं घर द्वार सजाये जाते हैं, शुभ कार्यों के अनुष्ठान होते हैं। सुन्दर स्वादिष्ट विविध प्रकार के पदार्थ खाने को मिलते हैं। बड़ा विचित्र आनन्द होता है। सबके मन में उत्साह होने से उसे उत्सव कहते हैं। भारतीय सदाचार में नित्य उत्सव है। कोई ऐसा मास नहीं, कोई ऐसा पक्ष नहीं कोई ऐसा दिन नहीं जिसमें कोई न कोई पर्व या उत्सव न हो। आर्यों के यहाँ जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उत्सव ही उत्सव हैं। इस प्राणी का जन्म आनन्द से हुआ, आनन्द में ही रहना चाहता है, इसीलिये पर्व और उत्सवों को लोग बड़े उत्साह से मनाते हैं, बड़ी बड़ी तैयारियाँ करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी व्रज में रहकर ग्वाल बालों के साथ नित्य ही भाँति भाँति की क्रीड़ायें करके गोपियों तथा ग्वालों को सुख देते थे। उनके सभी चरित्र अलौकिक होते थे। खेल तो सब प्राकृत बालकों के ही सदृश करते थे, किन्तु उनमें कोई ऐसी विलक्षणता होती थी, कि सभी का चित्त उस ओर खिंच जाता।

एक दिन भगवान् ने देखा "नन्दबाबा बड़े व्यग्र हो रहे हैं। सभी गोप चौपाल पर एकत्रित हैं। पुरानी पुरानी बहिया खोली जा रही है। पुरोहितजी कह रहे हैं, इतने चावलों के बोरे लाओ चावल टूटे न हों, अक्षत हों। जौ के इतने बोरे लाओ उनको पानी में धोकर सुखलेना बीनलेना देखलेना घुन न हों। तिलके इतने बोरे चाहिये, वे सब काले हों नये हो, उनमें जीव-जन्तु न हों। सबको फटकलो, बीनलो, चुनलो धोलो। चीनी इतनी लाओ, घृत गौका ही होना चाहिये। भैंस आदि का उसमें

न मिला हो। अमुक वस्तु इतनी चाहिये। समिधा उस वृक्ष की चाहिये। अमुक वस्तुएँ वहाँ मिलेगी सब वस्तुओं को शीघ्र ही एकत्रित करो।" पुरोहितजी की बात सुनकर गोप इधर से उधर दौड़ रहे थे। कोई कुछ लाता, कोई कुछ उठाकर रखता। गोप गोपियों में एक प्रकार की खल बली मच रही थी, मानों समुद्र में ज्वार भाटा आ गया हो।

भगवान् ने देखा यह सब किस बातकी तैयारियाँ हो रही हैं? वे कुतूहल वश जाकर व्रजराज के समीप बैठ गये। और बोले—"बाबा! बाबा! आज क्या बात है ये सब तैयारियाँ किस बात की हो रहीं हैं, आज कौन—सा उत्सव है? उस उत्सव का क्या नाम है? उसमें क्या किया जाता है?"

नन्दजीने सोचा—"यह कनुआ बड़ा कुतर्की है। ऐसी ऐसी बातें पूछ बैठता है, कि उसका उत्तर मुझे भी नहीं सूझता। मुझे क्या बड़े बड़े ऋषि मुनि चुप हो जाते हैं; अतः इसे टाल देना चाहिये। यही सोचकर वे बोले—"बेटा! यह बड़े बूढ़ों का है, मुझे इन बातों से क्या। जा तू जाकर ग्वालबालों के साथ खेल।"

यह सुन भगवान अड़गये और बोले—"नहीं बाबा! मैं तो आज इस बात को जानकर ही जाऊँगा। तुम कहते हो, यह बड़े बुढों का काम है। अब तुम बूढ़े हो गये। भगवान् करे, कहीं तुम्हारी आँख मिच जाय तो फिर सब मुझे ही तो करना होगा। इसलिये अभी से सब समझ बूझ लेना ठीक है।

नन्दजी ने देखा यह मानेगा नहीं; अतः बोले—"बेटा! यह इन्द्रभगवान् की वार्षिकी पूजा का उत्सव है।"

उत्सुकता के साथ श्यामसुन्दर बोले—"इस उत्सव में क्या होता है!"

प्यार से नन्दजी बोले—"इसमें भैया यज्ञ होता है।

सब सामग्री एकत्रित की जाती हैं। पिछले वर्ष भी तो हुआ था। तुझे याद तो रहती नहीं खेल में मस्त रहता है। बड़ा भारी यज्ञ-मण्डप बनता है। उसे सजाया जाता है। उसमें तिल, चावल, जौ, दूध, दही, घृत, मट्ठा, नवनीत, गुड़' शहद और सब सामग्रियाँ लायी जाती हैं। मंडप सजाया जाता है बड़ी धूम धाम से यज्ञ होता है।"

श्रीकृष्ण ने पूछा—"बाबा! उसे कराते कौन हैं?

नन्दजी बोले—"अरे, बेटा! बड़े बड़े ऋषि मुनि आते हैं। गर्ग, गालव, शाकल्य शाकटायन, गौतम, करुप, कण्व वात्स्य, कात्यायन, सौभरि, वामदेव, याज्ञवल्क्य, पाणिनी, ऋष्यश्रृङ्ग, गौरमुख, भरद्वाज, वामन व्यास, श्रृङ्गी, सुमन्तु, जैमिनी कच, पराशर, मैत्रेय, तथा वैशम्पायन ये सभी ऋषि मुनि पधारते हैं, ये ही विधिवत् इन्द्रयाग कराते हैं।"

भगवान् ने पूछा—"बाबा! यह किस उद्देश्य से किया जाता है?"

नन्दजी ने झिड़ककर कहा—"अरे, उद्देश फुद्देश पूछ के क्या करेगा। यज्ञ होता है, बस इतना ही समझ ले।"

नम्रता के साथ भगवान् ने कहा—"देखिये, पिताजी! आप क्रुद्ध न हों, कोई बात छिपावें भी नहीं। देखिये संसार में तीन ही प्रकार के लोग होते हैं। शत्रु, मित्र और उदासीन। जो अपने सुख दुःख में सदा साथ रहते हैं अपना सदा भला चाहते हैं, वे तो मित्र कहाते हैं, जो अपने से द्वेष रखते हैं, अपना अनिष्ट चाहते हैं, वे शत्रु कहलाते हैं। जो न इष्ट चाहते हैं न अनिष्ट सामान्य रीति से रहते हैं वे उदासीन कहाते हैं। अहंता ममता से शून्य समदर्शी साधु पुरुष तो सबके साथ समान व्यवहार करते हैं, उनके लिये किसी के सम्मुख कोई बात छिपाने योग्य नहीं रहती। सबके सामने अपने मनो-

भावों को व्यक्त कर देते हैं।"

इस पर नन्दजी बोले—"देखो, बेटा! कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो किसी से कही जाती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो छिपाई जाती हैं।"

इस पर भगवान् ने कहा—"देखिये पिताजी! जहाँ तक हो, अपने मनोगत भावों को शत्रु से सदा छिपाता रहे। यदि कोई ऐसी बात हो, जिसका छिपना आवश्यक ही हो, तो उसे शत्रु से भी छिपावे उदासीन से भी छिपावे। जो अपने अन्तरङ्ग हैं, सुहृद हैं, पुत्रादि हैं वे तो अपने आत्मा के ही सदृश हैं उनसे तो कोई बात छिपायी ही नहीं जाती।"

नन्दजी ने कहा—"अरे, भैया! छिपाने और प्रकट करने की तो ऐसी कोई बात नहीं, किन्तु हम एक वंशपरम्परागत उत्सव—इन्द्रयाग कर रहे हैं सदा से होता आया है, हम भी कर रहे हैं।"

भगवान् ने कहा—"सदा से होता आया है, इतना ही कहना पर्याप्त नहीं मनुष्य जो भी कार्य करता है उसका कुछ न कुछ तत्त्व समझकर तब करता है। कोई कोई ऐसे भी काम होते हैं, जिनके विषय में कुछ समझते बूझते तो हैं नहीं, वैसे ही कर लेते हैं। पाप और पुण्य-कर्म चाहे समझकर किये जायँ, अथवा बिना समझे बूझे, फल तो दोनों का ही कुछ न कुछ होगा, किन्तु समझकर किये हुए कर्मों का जैसा फल होता है वैसा बिना समझे किये हुए कर्मों का नहीं होता। इसलिये आप जो यह यज्ञोत्सव करने वाले हैं, इसके फल के सम्बन्ध में कुछ जो जानते हो, उसे मुझे भी बता दें। यह जो आप यज्ञ कर रहे हैं, वह शास्त्र सम्मत है या लोक परम्परा से चला आया लौकिक कर्म है। इस विषय को जानने के लिये मेरे मन में बड़ा कुतूहल हो रहा है, आप इसके

सम्बन्ध की जितनी बातें हों, उन्हें मुझे स्पष्ट करके समझा दें। मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र हूँ पुत्र को तो बिना पूछे ही उपदेश देना चाहिये, फिर जब वह श्रद्धा से पूछ रहा हो तब तो कहना ही क्या ?"

भगवान् की ऐसी नम्रता और प्रेम में सनी वाणी सुनकर नन्दजी बोले—"अच्छा, मैं इस विषय को बताता हूँ। देख, बेटा! इस यज्ञ का नाम इन्द्र याग है। ये जो आकाश में मेघ दिखायी देते हैं भगवान् इन्द्र इन सबके अधिष्ठातृदेव हैं। मेघ उनकी आत्म मूर्ति ही हैं जल की वर्षा इन्द्र ही करते हैं; जिससे प्राणियों का जीवन चलता है। वर्षा से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं, मेघों के पति भगवान् इन्द्र जो जल की वर्षा करते हैं उससे अन्न आदि उत्पन्न होते हैं। उसी अन्न से हम प्रति वर्ष जल बरसाने वाले अमराधिप इन्द्र की पूजा करते हैं। यज्ञ से जो शेष अन्न बचता है, इससे हम धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी अपने समस्त व्यवहारों को चलाते हैं। हम लोग तो केवल श्रम ही कर सकते हैं, उस श्रम का फल तो मेघपति इन्द्र ही देते हैं। इस यज्ञ को हमारे पूर्वज भी करते आये हैं, हम भी करते हैं। इस परम्परागत धर्म को जो पुरुष किसी के भय से धनादि के लोभ से या देवताओं से द्वेष करने के कारण त्याग देते हैं, उनका कभी कल्याण नहीं होता। यही भैया हमने तो सुना है समझा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् तो सर्वज्ञ थे, वे सब कुछ जानते थे. उन्हें तो इन्द्र का अभिमान चूर करना था, जैसे ब्रह्माजी भगवान् की महिमा को नहीं समझ सके थे, वैसे इन्द्र भी उनकी महिमा को नहीं समझे थे। उसे अभिमान हो गया था, कि मैं ही तीनों लोकों का एक मात्र ईश्वर हूँ। अतः उसके इस अभिमान को चूर करने, उसे क्रोध ...

निमित्त भगवान् एक विचित्र ही तर्क उपस्थित करने लगे। उन्होंने युक्तियों द्वारा जो तर्क दी है, इन्द्र का यज्ञ करने में अपनी असम्मति प्रकट की है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

तब बोले ब्रजराज इन्द्रकी पूजा भैया।
जो बरसावैं नीर होहिं तृन खावैं गैया॥
जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवन दाता।
त्रिभुवन पति सर्वेश स्वर्गपति विष्णु विधाता॥
नन्द वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले व्रज चन्द्र तब।
जड़ चेतन चर अचर जग, पिता कर्म-वश भ्रमहिं सब॥

भगवान् द्वारा कर्मवाद का उपदेश

(६४७)

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥
तस्मात् सम्पूजयेत् कर्मस्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० २४ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

जीव कर्मवश होहि कर्मवश ही मर जावै ।
करे शुभाशुभ कर्म दुःख सुख तैसो पावै ॥
बँधे कर्ममहँ जीव इन्द्र का करे विचारो ।
तैसो तब तनु मिले कर्म जस होहिं हमारो ॥
कोउ न सुख दुख दै सकै, सब तै कर्म विशिष्ट है ।
जाकी जातें जीविका, चले तासु सो इष्ट है ॥

संसार में जितने भी वाद हैं सब भगवान् को ही तो लेकर हैं। कोई कहता है भगवान् हैं, कोई कहता है भगवान्

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीनन्दजी से भगवान् कह रहे हैं—'पिताजी! यह जीव अपने कर्म के अनुसार ही उत्तम और अधम शरीरों को ग्रहण करता है और छोड़ता है। यह कर्मों के अनुसार ही शत्रु, मित्र और उदासी का व्यवहार करता है। इसीलिये कर्म ही सबका गुरू है वही ईश्वर है। इसलिये मनुष्यों को कर्म की ही पूजा करनी चाहिये और पूर्व संस्कारों के अनुसार अपने वर्णाश्रम धर्म का

नहीं हैं। जो कहता है भगवान् हैं वह भी भगवान् के ही गुण गाता है. जो कहता है भगवान् नहीं हैं, वह भी भगवान् के ही सम्बन्ध में चर्चा करता है। एक उन्हें अस्ति रूप से मानता है दूसरा उन्हें नास्ति रूप से मानता है। उनकी सत्ता स्वीकार किये विना अस्ति, नास्ति कुछ कहना बनता ही नहीं। जो कहते हैं 'अस्ति' उनमें भी बड़े वाद हैं। कोई कहता है वे शिवरूप हैं, कोई विष्णु रूप बताता है। कोई दुर्गा, सूर्य, गणेश, कर्म, ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि आदि अनेक प्रकार से उनकी मीमांसा करते हैं। इस प्रकार जितने वाद विवाद हैं उन्हीं को लेकर हैं पक्षी आकाश के भीतर ही उड़ेगा। वह सोचे—"इस आकाश ने तो हमें बंधन में बाँध रखा है। अब हम इसे मानेंगे ही नहीं। पक्षी माने चाहे न माने उड़ना उसे आकाश में ही होगा। आकाश छोड़ कर वह कहीं जा नहीं सकती। इसी प्रकार कुछ लोग कहते हैं—'संसार में जितने झंझट हैं ईश्वर को ही लेकर हैं, अतः ईश्वर का ही बहिष्कार करो। ईश्वर को ही मानना छोड़ दो। भले ही छोड़ दो, किन्तु ईश्वर के बिना रह नहीं सकते। जो भी कल्पना करोगे, जो भी वाद खड़ा करोगे उसका आधार तो ईश्वर ही होगा। मीमांसक लोग कर्म को ही ईश्वर मानते हैं। जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल पावेगा। कर्म के अतिरिक्त वे किसी अन्य ईश्वर को नहीं मानते, अतः उन्हें कोई कोई नास्तिक भी कहते हैं, किन्तु कहनेसे क्या हुआ नास्तिक भी हो तो उसका भी मूल आधार तो भगवान् ही हैं। भगवानको ही लेकर तो उनका वाद आरंभ होता है, भगवान ने कुछ ऐसी मोहनी माया फैला रखी है कि सभी

पालन करते रहना चाहिये। जिसकी जिसके द्वारा सुगमता से आजीविका चलती है वही उसका इष्ट देव है।

अपने अपने वाद को सत्य मानते हैं। अद्वैतवादी कहते हैं भगवान् एक अद्वैत हैं। भगवान् चुपके से उनके कान में कह देते हैं-"हाँ, मैं अद्वैत ही हूँ।" दूसरा कहता है, नहीं भगवान् द्वैत हैं, तो आँख बचाकर उनके भी कान में भगवान् कह देते हैं—"तेरा ही कथन यथार्थ है मैं द्वैत ही हूँ।" ऐसे ही आस्तिक नास्तिक दक्षिणमार्गी वाम मार्गी, शैव, शक्त, गणपत्य, सौर तथा वैष्णव सभी को वे फँसाये हुए हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भोले भाले गोप इन्द्र को ही समस्त कर्मों का फलदाता मानकर उसकी पूजा करते थे और इन्द्र को भी अभिमान हो गया था, कि मैं ही सबका स्वामी हूँ, अतः दोनों के कल्याण के निमित्त भगवान् कर्मवाद की प्रशंसा करने लगे, वे सब गोपों को सुनाते हुए नन्दजीको सम्बोधित करते हुए बोले—"पिताजी! आप कहते हैं इन्द्र जीवनदाता है, यह बात सत्य नहीं है जीव तो कर्मों के आधीन है। सभी प्राणी अपने अपने कर्मों के अनुसार उत्पन्न होते हैं और कर्मानुसार ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सुख, दुख, भय, शोक, हानि, लाभ, यश, अपयश, क्षेम तथा मान प्रतिष्ठा ये सभी सबको कर्मानुसार प्राप्त होती हैं।"

नन्दजी ने कहा—"अरे, भाई! कर्म तो जड़ हैं वे भला स्वतः सुख दुख क्या दे सकते हैं। कोई लोहका यन्त्र है किसी विधि से वह चलता है यदि उसे कोई चलाने वाला न हो तो चलेगा नहीं। चलेगा तो चलता ही रहेगा। इसी प्रकार फल कर्मानुसार मिलता है, यह बात तो सत्य है किन्तु इन कर्मों का फल देने वाला भी तो कोई होगा। तब वह कर्म फल देने वाला बड़ा हुआ या कर्म बड़े हुए?"

भगवान् बोले—"फल देने वाले की तो कोई आवश्यकता नहीं यह सब प्रपञ्च काल, कर्म और स्वभाव के अनुसार चल रहा है।

जिस काल में जीवों के कर्म भोगोन्मुख होते हैं, तो स्वभावानुसार जीवों की ऐसी ही प्रवृत्ति हो जाती है। स्वातिकी बूंद गधे की लीद में पड़े तो उससे स्वभावानुसार अपने आप विच्छू पैदा हो जाते हैं। जल भी जड़ है, गोबर भी जड़ है उन दोनों के संयोग से स्वभावानुसार चैतन्य जीव हो जाते हैं। अच्छा थोड़ी देर को मानलो फल देने के लिये सुख दुःख आदि फलों को देनेवाला कोई ईश्वर है, तो रहे। उसके रहने से कर्म का श्रेष्ठत्व तो सिद्ध नहीं होता, फलदेने वाला जो भी होगा, वह कर्म के ही अनुसार तो फल देगा। जिसने कर्म किया होगा उसीको तो फल देगा। जिसने कर्म नहीं किया है, उसे तो फल देने में वह समर्थ नहीं है। एक आदमी प्रवेश पत्र वेच रहा है। जो नियत मूल्य देता है, उसे वह प्रवेशपत्र थमा देता है, तो बड़ा द्रव्य हुआ या वेचने वाला। बिना द्रव्य के वह दे नहीं सकता। वह भी द्रव्य के ही अधीन होकर वेचने का काम कर रहा है, अतः प्रधानता तो द्रव्य की ही रही। इसी प्रकार कर्मों के फल देने को तुम किसी की कल्पना कर भी लो, तो वह भी तो कर्माधीन होकर ही फल देगा।"

नन्दजी ने कहा—"भाई, देने वाला तो वही है।"

भगवान् ने कहा—"देनेवाला वह कहाँ हैं। पूर्व संस्कारों के अनुसार जिसके जो भाग्य में बदा है उसे तो वह फलदेने वाला भी अन्यथा नहीं कर सकता। कर्मानुसार प्राप्त वस्तु तो हमें अवश्य मिलेगी। जब जीव कर्मों के ही अनुसार अनुसरण करते हैं, कर्मों के फल स्वरूप ही सुख दुख भोगते हैं, तो फिर इन्द्र से क्या प्रयोजन ?"

नन्दजी ने कहा—"भाई, यह बात तो हमारी बुद्धि में बैठती नहीं। एक दिन एक समय में दो बच्चे पैदा हुए। एक तो अत्यन्त दरिद्र के घर उत्पन्न हुआ, दूसरा अत्यन्त धनी के यहाँ। पैदा होते

ही एक को तो समस्त सुख की सामग्रियाँ प्राप्त होने लगी दूसरे को भर पेट दूध भी प्राप्त नहीं होता। उन दोनों ने कोई कर्म तो किया नहीं, फिर एक को जन्मते ही सुख क्यों प्राप्त है और उसी काल में उत्पन्न दूसरे को दुख क्यों मिल रहा है?

भगवान् ने कहा—"इस जन्म के कर्म न सही, पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मके ही अनुसार उन दोनों का जन्म धनी और दरिद्र के यहाँ हुआ। एक का कर्म दूसरे को तो मिल नहीं जायगा। एक गौशाला में सहस्र गौएँ एकसी हैं। उनमें से जिसका बच्चा होगा, वह अपनी माता को पहिचानकर उसी का दूध पीने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ जीव अपने पूर्व स्वभाव के पूर्व संस्कारो के अधीन है। देवता हों, असुर हों, मनुष्य हों, पशु, पक्षी, कटीपतंग तथा और भी समस्त चराचर जगत् के प्राणी सभी स्वभाव में, स्थित हैं। कोई उत्तम कर्म करने से उत्तम योनि को प्राप्त होता है, दूसरा अधम कर्म करके अधम योनि में जाता है। संसार में हमारा न कोई शत्रु है न मित्र न उदासीन। कर्म के ही अनुसार शत्रुता, मित्रता उदासीनता होती है, गुरु भी कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। प्राप्त क्या होता है कर्म ही गुरु का रूप रखलेता है, कर्म ही गुरु है और ईश्वर भी कर्म ही है। सबसे अधिक आदरणीय कर्म ही है।"

नंदजी ने कहा—"अरे, बेटा! कर्म तो हम कर ही रहे हैं। क्या यज्ञ करना कर्म नहीं है?"

भगवान् बोले—"कर्म क्यों नहीं है, कर्म अवश्य है। मैं यह थोड़ेही कहता हूँ, आप यज्ञ न करें। यज्ञ अवश्य करें किन्तु कर्मका आदर करके यज्ञ करें। आपतो इन्द्रके भय से उसका आदर कर रहे हैं। इन्द्रको ही सब कुछ समझ रहे हैं। कर्म करने को तो मैं मना नहीं करता। कर्म तो सभी को करना ही चाहिये अपने पूर्व जन्मोंके

संस्कारानुसार जिसे जो वर्ण प्राप्त हो, जिसे जो आश्रम प्राप्त हो उसके अनुसार कर्म करे सदा कर्म का ही आदर करे।"

नन्दजी ने कहा—"अच्छा यह तो ठीक है, कर्म का आदर करे, किन्तु यज्ञादि में किसी को इष्ट मानकर ही तो पूजा की जाती है। अब इस यज्ञ में इष्ट किसे माने। पूजन किसका करें।"

भगवान् ने कहा—"देखिये, पिताजी! सबका एक इष्ट नहीं होता। कर्मानुसार सबके इष्ट पृथक पृथक होते हैं। जिसके कारण जिसकी जीविका सुगमतासे चले, उसके लिये वही उसका इष्टदेव है उसीका उसे पूजन करना चाहिये। एक मल्लाह है, उसकी आजीविका नौका से चलती है, तो उसे नौका को ही इष्ट मानकर पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण है उसकी पुस्तक से आजविका चलती है उसे पुस्तक की पूजा करनी चाहिये क्षत्रिय है उसकी अस्त्र शस्त्र तथा हाथी घोड़ों से आजीविका चलती है तो उसे उन्हीं का पूजन करना चाहिये। वैश्य है उसकी तुला (तराजू) से आजीविका चलती है उसे तराजू का पूजन करना चाहिये। स्त्री की पति से आजीविका चलती है उसे पति की पूजा करना चाहिए। इष्ट को भोगलगाकर प्रसाद पाना चाहिये। किन्तु इष्ट बनावटी न हो, स्वभावानुसार हो। यह नहीं कि गंगा गये गंगादास यमुना गये यमुनादास अपने स्वभाव कर्मानुसार इष्ट हो।"

इसपर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! बनावटी इष्ट कैसा होता है?"

सूतजी बोले—"सुनिये महाराज इसपर मैं एक हँसीका दृष्टान्त सुनाता हूँ। एक किसान था किसान बड़ा सरल था, किन्तु उसकी स्त्री बड़ी तिकड़मी थी। जीभ की बड़ी चटोरी थी। जो स्त्री जीभ की चटोरी होती है, वह अच्छी अच्छी वस्तुएँ बना बना कर चुरा चुरा के उड़ा जाती है। अपने पति को तथा देवर जेठ को

पूछती भी नहीं। वह घरमें अकेलीथी। पति दिनभर खेतपर काम करता। पतिको प्रथम वह रूखी सूखी रोटी बनाकर खिलादेती और उसे हर बैल लेकर खेतपर भेज देती। पीछे अच्छी सी मैदा को माड़ती। माड़ते समय उसमें घी भी मिला देती उसका एक अंगा बनाती, उसे आगकी भूभरमें गाड़देती। शनै शनै राखमें पककर वह लाल हो जाता। पककर फूटकी भाँति खिल जाता तब उसे निकालती। उसकी राख झाड़ती। गीले कपड़ेसे उसे पौंछती। उसमें फिर टटका ताजका बनाया सुन्दर सुगंधित घी मिलाती। बूरा मिलाती। प्रसाद तैयार होगया। अब किसीको इष्ट मानकर भोग भी लगाना चाहिये। वह अपने यथार्थ इष्ट पतिको तो ठगनाही चाहती थी, इसलिये उसने घरकी देहली को बनावटी इष्टदेवी बनालिया। उस प्रसादका नाम उसने रखा था "भूभरिया भोग" क्योंकि यह भोग भुभरमें ही पकता था। इसलिये वह अपनी इष्ट देवी देहलीके ऊपर बैठ जाती और इस मन्त्रको पढ़ती—'सुनि सुनि री देहरिया रानी। मेरे नहीं सास जिठानी। जो तेरी आज्ञा पाऊँ, तो भुभरिया भोग लगाऊँ।" इस मंत्रको पढकर अपने ही आप फिर कह देती हाँ लगाइले लगाइले" बस जल छिड़क कर उस भुभरिया भोगको मट्ट मट्ट खा जाती। ऐसा सुन्दर नित्य भुभरिया भोग पाते पाते वह लाल पड़ गई। किसान बेचारा दुबला पतला होता जाता था। उसने सोचा घरमें तो रोटी और सागही बनता है उससे यह लाल क्यों पड़ती जाती है। कुछ न कुछ इसमें कारण है। वह इसकी खोज लगाने लगा।

शत्रु मित्र तो सभीके होते हैं, किसीने किसान से कहा— "तेरी बहू तो नित्य भुभरिया भोग उड़ाती है। एक दिन वह चुपकेसे खेतमें से लौटकर घर आया। संयोगकी बात उसी समय उस स्त्रीका 'भुभरिया भोग' तैयार हुआ था। अपनी

इप्ट देवी देहरी पर वैठकर वह इस मंत्रको पढ़रही थी "सुनि सुनि री देहरिया रानी,मेरे सास न जिठानी। जो तेरी आज्ञा पाऊँ तो भूभरिया भोग लगाऊँ, फिर अपने ही आप वोली "लगाइले लगाइले" इतना कहकर मट्ट मट्ट उस भोग को खागई। किसान लौटकर खेतपर चला आया। उसने सोचा—"मेरी स्त्री तो वड़ी तिकड़मिनि है, मालभी उड़ाती है और भोग लगाकर खाती है। उहने देहलीको बनावटी इप्टदेवी बना रखा है। मैं भी ऐसा ही एक बनावटी इप्ट देव वनाऊँ और इसे इसकी करनी का फल चखाऊँ। यह सोचकर उसने अन्न भरने के अरे (कुठला) को अपना बनावटी इप्ट बनाया।

दूसरे दिन नियमानुसार उस स्त्रीने फिर भूभरिया भोग वनाया। आज किसान पहिलेसे ही आकर छिपा था। जव उस ने भोग लगाकर देहली पर वैठकर यह मन्त्र पढ़ा—"सुनि सुनि री देहरिया रानी, मेरे सास न जिठानी।" जो तेरी आज्ञा पाऊँ तो भूभरिया भोग लगाऊँ और अपने ही आप लगाइले लगाइले" कहकर खाने लगी तभी किसान डंडा लेकर निकला और सामने के अरे को हाथ जोड़कर वोला—"सुनि सुनि रे भैया अरे, मेरे ससुर न सारे। जो तेरी आज्ञा पाऊँ, तो जा – "ठगिनी पै कुतक वजाऊँ फिर-अपने आपही वोला—"वजाइलै वजाइलै" ऐसा कहकर—फिर उसने उसकी अच्छी प्रकार डंडोंसे पूजा की।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इसे वनावटी इप्ट कहते हैं। यह दम्म है पाप है। जिससे अपनी आजिविका चले उसीको इप्ट मानकर पूजना चाहिए। भगवान् कर्मवाद की पुष्टि करने को ये सब वातें कह रहे हैं। गोपोंको समझाते हुए कह रहे हैं— "देखो, भाई! जिससे अपनी आजिविका चले उसी एक देवताकी पूजा उपासना करनी चाहिये। जो आज एक की उपासना कर

रहा है; कल दूसरे की परसों तीसरे की—इस प्रकार करने वाले को कभी शान्ती नहीं होती। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री है, आज एक से प्रेम किया, कल दूसरे से परसों तीसरे से। उसका किसी में स्थाई प्रेम नहीं होता वह नित्य नये पति बनाती है और उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करती है। जैसे उसे कभी शान्ति नहीं मिलती उसी प्रकार इधर से उधर नित्य इष्ट बदलने वाले को शान्ति नहीं मिलती।

नन्दजी ने कहा—"तो भैया! किसी का इष्ट कौन हो सकता है? हमें किसकी पूजा करनी चाहिए?"

भगवान् बोले—"देखो, ब्राह्मण की वृत्ति वेद से है अतः वेद ही ब्राह्मण का इष्ट है। क्षत्रिय की वृत्ति पृथिवी का पालन है, अतः पृथिवी ही उसकी इष्ट देवी है। वैश्य की वृत्ति व्यापार है, अतः लक्ष्मी उनकी इष्ट है। शूद्र की वृत्ति सेवा है अतः द्विजाति ही उनके इष्ट है। वैश्यों की वृत्ति चार प्रकार की बताई है, खेती करना व्यापार करना गोरक्षा करना तथा व्यापारसे रुपये कमाना। इनमें एक से दूसरी निकृष्ट है। अर्थात् खेती करना सर्वोत्तम है, उससे नीचे व्यापार है, व्यापार से भी नीचे रस आदि की बिक्री है और सबसे नीच वृत्ति है व्याज से आजीविका चलाना।"

नन्दजी ने कहा—"तो फिर भैया। हम लोग किस में रहें?"

भगवान् ने कहा—"हम लोग खेती, व्यापार या लेन देन तो करते नहीं हमारी तो एक मात्र आजीविका गोरक्षा ही है। गौएँ ही हमारी इष्ट देवी हैं। अतः हम लोगों को गौओं की पूजा करनी चाहिये और गौओं को जहाँ से आहार मिलता है, उस गोवर्धन की पूजा करनी चाहिये।"

नन्दजी ने कहा—"अरे, भैया, गोवर्धन तो गौओं को घास देता ही है, किन्तु यदि इन्द्र वर्षा न करें तो गोवर्धन पर घास होगी कैसे ? वर्षा करने वाले तो इन्द्र ही हैं।"

भगवान् ने कहा—"पिताजी ! मैं पहिले ही बता चुका, इन्द्र भी एक कर्मानुसार देवता है। एक कल्प में चौदह मनु और चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। जो स्वयं कर्म प्राप्त भोगों को भोग रहा है, वह क्या वर्षा कर सकता है ?" इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों के द्वारा होती है। यह नाना योनियों वाले जीव स्त्री पुरुष के समागम द्वारा होते हैं। जब स्त्री तथा पुरुष के हृदय में रजो गुण जन्य काम की उत्पत्ति होती है तो रजवीर्य के सम्बन्ध से शरीर बन जाता है। इसी प्रकार जो गुण से प्रेरित होकर मेघ गण वर्षा करते हैं।"

नन्दजी ने पूछा—"मेघ वर्षा अपने आप कैसे कर सकते हैं, उनसे इन्द्र ही तो वर्षा कराते हैं।"

भगवान बोले—"पिताजी ! आप देखते हैं, प्रत्येक सम्वत् सर के जलेश, धन्नेश, राजा तथा मंत्री पृथक् पृथक् होते हैं। सूर्य अपनी किरणों द्वारा समुद्र से, नदियों से, कूप तथा सरोवरों से तथा समस्त प्राणियों के शरीर से उष्ण काल में जल खींचते हैं। वर्षाकाल में उस जल को वे बादलों को दे देते हैं। वायु की प्रेरणा से मेघ आपस में टकराते हैं जिससे गर्जना होती है, फिर वे स्थान स्थान पर जल वर्षाते हैं। उस जल से तृण, वृक्ष, गुल्म, लतायें तथा औषधियाँ होती हैं, उन पर फल लगते हैं। उन्हीं से अन्न होता है, जिससे प्राणियों का जीवन चलता है। सब अपने अपने प्रारब्ध कर्मों के अनुसार भोग भोगते हैं। कर्मों से ही दुःख, जन्म, मरण, रोग, शोक, उत्पत्ति, विपद्, संपत्, विद्या, बुद्धि, कविता, कला, यश, अपयश, पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, मुक्ति, मुक्ति तथा

भगवान् में भक्ति होती है। कर्मानुसार ही समय समय पर वर्षा होती है, फिर इसमें इन्द्र की क्या आवश्यकता है ?"

नन्दजी ने कहा—"भैया ! वंश परम्परा से यह पूजा चली आई है। सब लोग इसे करते आये हैं। कुलागत धर्म को कैसे छोड़े ?"

भगवान् बोले—"पिताजी यह सब बातें तो नगर निवासी नागरिकों के लिये या पुरवासियों अथवा नगर वासियों के लिये हो सकती हैं। हमारे न कोई पुर है, न नगर है और न ग्राम ही। हम तो वनवासी हैं, नित्य ही वनों में पर्वतों की कन्दराओं में रहते हैं। शकट ही हमारे घर हैं। जहाँ इच्छा हुई गाड़ा जोत दिये गौओं को बाँध दिया हमारा निवास स्थान बन गया। हम कोई एक स्थान में घर बना कर तो रहते नहीं। जिस वन में गौओं के लिये सुन्दर घास देखी जल का सुपास देखा वहीं डेरा डाल दिया। हमारे तो इष्ट ये हमारे पुरोहित ब्राह्मण हैं, ये गौएँ हैं और यह गिरिराज गोवर्धन पर्वत है। यही हमारे पूज्य हैं, इन्हीं की पूजा करनी चाहिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब भगवान् ने इस प्रकार अनेक युक्तियाँ देकर इन्द्र के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ का खण्डन किया। तो सभी गोप आश्चर्य चकित हो गये। प्रतिवर्ष यज्ञ करते थे, अतः यज्ञ किये बिना रह भी नहीं सकते थे, साथ ही उन्होंने श्रीकृष्ण के अनेक अलौकिक कर्म देखे थे। अनेकों असुरों को भगवान् ने बात की बात में मार दिया था। भगवान् के दर्शनोंको बहुत से ऋषि-मुनि आते थे, वैसे भी भगवान् की रूप माधुरी वेणुमाधुरी और लीलामाधुरी के कारण सभी व्रजवासी आकृष्ट थे अतः वे उनकी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ करना नहीं चाहते थे। इसलिये उन्होंने भगवान से ही पूछा कि

क्या ? जो हमें करना हो, जिसके करने से अनिष्ट न हो सुख शान्ति की प्राप्ति हो, उसी कर्म का हमें उपदेश करो। इस पर भगवान् ने जो गोवर्धन पूजन का प्रस्ताव किया, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

विप्रवेद तैं करें जीविका क्षत्रिय महि तैं।
वैश्य वनिज कृषि धेनु व्याजके मिले धनहि तैं॥
करिके सेवा शूद्र द्विजनिकी वृत्ति चलावें।
जो स्वधर्म महँ रहें अन्त महँ सद्गति पावे॥
देहिं घास, जल मूल फल, गोप इष्ट गिरिराज हैं।
पूजो गिरिवर धेनु द्विज, पूरन सबही काज हैं॥

—:०:—

गोवर्धन पूजा का प्रस्ताव

(६४८)

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥*

(श्री भा० १० स्क० २४ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

पूरी छुन छुन छनैं कचौरी खस्ता सुन्दर।
रबड़ी लच्छेदार खीर केशरिया सुखकर॥
हलुआ मोहनथार जलेबी पेरा मठरी।
टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी॥
व्यञ्जन सब सुन्दर बनें, दाल, भात, रोटी कढ़ी।
साग रायते विविध विधि. उड़द मूँग आलू बड़ी॥

वास्तवमें पूजा वही सुन्दर सुखकर और रुचिकर होती है, जिसमें सर माल मिले। जहाँ सूखे शङ्ख बजते हों, ऐसी पूजाको तो घर बैठे ही हाथ जोड़ दे। जिसमें प्रसादका डौलडाल नहीं वह पूजा ही

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान नन्दजी से कह रहे हैं—"देखो पिताजी! हम लोग वनवासी हैं, इसलिये सब लोगों को मिलकर गौओंकी ब्राह्मणोंकी और गोवर्धनपर्वतकी पूजा करनी चाहिये। जो सामग्री आपने इन्द्रयाग के लिये एकत्रित की है इसीसे यह गोवर्धन-पूजन यज्ञ हो।"

क्या ? शुभकर्मका फल शुभ प्रसाद है। मनकी परम प्रसन्नता ही सबसे बड़ा प्रसाद है, जिस कर्ममें मन आह्लादित होता हो। जिस पूजामें सभीको समान उत्साह हो, वही पूजा पूजा है। शेष तो पेटपूजा है अपने व्यवसायके ढङ्ग हैं। केवल आजीविकाके लिये की हुई पूजा व्यवसाय चलानेका उपकरण मात्र है। पूजाकी सफलता इष्टके प्रकट होनेमें है। जिस पूजासे इष्ट प्रकट हो जाय, वही यथार्थ पूजा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब अनेक युक्तियोंसे भगवान्‌ने इन्द्रकी पूजाका निराकरण किया, तो नन्दजीने पूछा—"अच्छा, भैया ! अब तू ही बता, किसका पूजन करें ? किसके उद्देश्यसे यज्ञ करें ?"

भगवान् बोले—"पिताजी ! प्रत्यक्ष देवोंको छोड़कर परोक्ष देवोंके पीछे क्या पड़ना ? पृथिवीपर गौ, ब्राह्मण और गोवर्धन-पर्वत ये ही तीन प्रत्यक्ष देव हैं। इन तीनोंका ही पूजन हो। गिरिराजको तो भोग लगे। वेदपाठी ब्राह्मण आवें, विधि विधान पूर्वक अग्निहोत्र करें। नाना प्रकारके द्रव्य, अन्न, वस्त्र तथा गौएँ दान दक्षिणामें पावें। गौओंको सजाया जाय, उन्हें हरी हरी घास खिलायी जाय। मेरी बुद्धिमें तो ऐसा ही उत्सव मनाना चाहिये।"

नन्दजीने पूछा—"तो भैया ! इस तरह यज्ञके लिये फिरसे नयी सामग्री इकट्ठी करनी होगी क्या ?"

भगवान् बोले—"अजी, नहीं पिताजी ! नयी सामग्रीकी क्या आवश्यकता है, आपने जो यह इतनी सामग्री इन्द्रयागके निमित्त एकत्रित की है, उसीसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दीजिये। किन्तु एक बात है, मेरा देवता इन कच्चे जौ तिल चावलसे स्वाहा-स्वाहा करनेसे सन्तुष्ट होनेवाला नहीं है। इसके लिये तर माल चाहिये।

नन्दजी ने कहा—"हाँ, भैया ! यही तो हम पूछते हैं, क्या क्या माल चाहिये। तेरे देवताओं का तो हम स्वभाव अभी जानते भी नहीं, यह भी नहीं जानते वह कौन-सी सामग्री से सन्तुष्ट होगा। अब तक तो हम प्रति वर्ष इन्द्र की ही पूजा करते थे। हमारे लिये तो गोवर्धन नया ही देवता है।"

भगवान् ने कहा—"अच्छा, आपने आज तक अपने देवता को कभी प्रत्यक्ष भोग लगाते देखा है ?"

नन्दजी ने कहा—"भैया ! देवता तो परोक्ष प्रिय होते हैं। अग्नि देवताओं का मुख है, वे ही सब देवताओं को हवि पहुँचाते हैं। हमने अग्नि में शाकल्य जलते तो देखा है। इन्द्र को प्रत्यक्ष खाते तो देखा नहीं। खाते क्या, आज तक हमने तो कभी इन्द्र के दर्शन भी नहीं किये।"

भगवान् बोले—"आप मेरे देवताओं को देखें, वह प्रत्यक्ष होकर आप सबके सम्मुख प्रसाद पावेगा। आप सब उसे प्रसाद पाते हुए देखेंगे।"

इस पर सब गोप आनन्द के साथ बोल उठे—"बाबा ! बाबा ! अबके कनुआ के ही देवता की पूजा करो। इन्द्र की इतने दिनों से पूजा कर रहे हैं, इन्होंने तो कभी दर्शन दिये नहीं। कनुआ का देवता सबके सम्मुख प्रकट होगा, यह बड़े आनन्द की बात है, हम सब उसके दर्शन करेंगे।"

यह सुनकर नन्दजी बोले—"अच्छी बात है, यदि आप सबकी ऐसी ही सम्मति है, तो ऐसा ही हो, किन्तु देवता नया है, कनुआ ही उसकी नस नाड़ी को पहिचानता होगा, इससे पूछ लो, वह क्या खाता है। वे ही वस्तुएँ उस देवता के लिये तैयार की जायँ।"

भगवान् बोले—"मेरे देवता के खाने की बात मत पूछो, वह खाता बहुत है और नाना भाँति के खट्टे, मीठे, चरपरे, कसैले,

कड़वे तथा नमकीन इन षडरसों से युक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य इस प्रकार चारों प्रकार के पदार्थों को उड़ाता है। अब सब लोग इन पदार्थों को यथेष्ट बनावें।

नन्दजी ने कहा—"अरे, कुछ के नाम तो बता दे।"

भगवान् बोले—"नाम क्या बताऊँ, कच्चे, पक्के, फलाहारी, दूध चरके सभी पदार्थ बनें। टकोरेदार सुन्दर पतली-पतली फूली फूली पूड़ियाँ छनने दो। रबड़ी के समान अघौटा दूध की खीर घुटने दो। सभी प्रकार के पदार्थ बनें। पूड़ी; पूआ, कचौड़ी, सकलपारे, टिकियाँ, बड़े, गुँजियाँ, लड्डू, तिकोना, समोसे सभी बनाये जायँ। दूध का खोया बनाकर उससे लड्डू, पेड़ा, बरफी, गुलाबजामुन, गुँझियाँ आदि खोये की मिठाइयाँ बनायीं जायँ। दूध को फाड़कर उसके छैंने से रसगुल्ला, चमचम, लॅवगलता आदि मिठाइयाँ बनें। छैंना का नमकीन साग भी बने। दूध की खीर बने, रबड़ी बने, खुरचन बने। मलाई की पूड़ियाँ बने मलाई के पूए बनें और भी मलाई की जो मिठाई बनती हों सब बने। दही से श्रीखण्ड बने, पंचामृत, दही बड़े बने, सौंठ बने। कद्दू घीया, बथुआ, निकुती, ककड़ी, पोदीना आदि के रायते बने। मूँग उड़द की दाल की पकोड़ियाँ बड़े, इमरतियाँ आदि बनें। मूँग की दाल की कढ़ी भी बने। बेसन के लड्डू, निकुती, नमकीन, पपड़ी, सकलपारे आदि अनेक व्यंजक बनें। गेहूँ के आटे की जितनी वस्तुएँ बना सको बनाओ। सूजी का स्वादार संयाव-हलुआ-बने जिसमें गोवर्धन को दाँत लगाने की भी आवश्यकता नहीं। मुख में रखा, कि सट्ट गले से नीचे उतर गया। यह बात नहीं कि हमारे देवता के यहाँ पक्की रसोई कच्ची रसोई का विचार हो। यह कच्ची पक्की में भेद-भाव नहीं मानता। आप पतले पतले फूले फूले फुलका बनावें। मिस्सी नमकीन रोटियाँ बनावें। मूँग उड़द की दाल की

चुनी मिलाकर नमकीन हाथ की गोचादार रोटियाँ बनावें। बढ़िया सुगन्धित बाँसमती चावल भी बने। फिलौरी और पकौड़ीदार कढ़ी भी बने। जितने प्रकार के साग मिलें सबको पृथक् पृथक् भी बनाओ और एक में मिलाकर भी बनाओ। अन्नकूट ही जो ठहरा। बाजरे को कूटकर उसका भी भात बनाओ। मेरा देवता फलाहार भी उड़ाता है; अतः कूट्टू के रामदाने के भी जितने पदार्थ बना सको उनको भी बनाओ। ऋतु के जो भी फल मिल सकें सबको एकत्रित कर लो! कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि जितने भी पदार्थ बना सकते हो सब बनाओ। कम से कम छप्पन प्रकार के पदार्थ तो हों ही। अधिक जितने भी हों उतने ही अच्छे। दाल भात से लेकर खीर, पूड़ी पूआ, हलुआ सभी बनें।

गिरिराज गोवर्धन की पूजा करके उनका भोग लगाकर, प्रसादी पदार्थों से ब्राह्मण से लेकर चांडाल पतित पर्यन्त, गौ से लेकर कुत्ते तक सभी को तृप्त करो। सबको यथायोग्य देकर फिर तुम सब भी अपने बन्धु बान्धव तथा जाति कुटुम्ब वालों के सहित प्रसाद पाओ। प्रसाद पाने के अनन्तर सभी स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध अच्छे अच्छे नये वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर गिरिराज गोवर्धन की जय जयकार बोलते हुए उनकी प्रदक्षिणा करो। गौओं और ब्राह्मणों की भी प्रदक्षिणा करो। पिताजी! मेरी तो सम्मति यही है, फिर आप सब बड़े हैं, जो उचित समझें वही करें। इस यज्ञ से गौएँ बहुत प्रसन्न होंगी। ब्राह्मणों का पूजन होगा, उन्हें दान दक्षिणा मिलेगी, अतः वे भी प्रसन्न होंगे। गिरिराज गोवर्धन पर्वत प्रत्यक्ष होकर आपको दर्शन देंगे और आपकी की हुई पूजा को ग्रहण करेंगे। मुझे भी इस गोवर्धन पूजा से बड़ी प्रसन्नता होगी।"

यह सुनकर नन्दादि गोप बोले—"भैया! हमें तो तेरी ही

प्रसन्नता चाहिये। जिस बात में तू प्रसन्न रहे, उसे तो हम प्राणों का पण लगाकर करने को तत्पर हैं; और चाहें जो रुठ जायँ तू न रुठना चाहिये। हमें तो तुझे प्रसन्न करना है। तुझे प्रसन्न कर लिया तो, मानों विश्व ब्रह्माण्ड को प्रसन्न कर लिया।"

इस पर कुछ दुर्बल हृदय के गोप बोले—"भाइयो! सब बात समझ बूझ लो। इन्द्र सभी देवताओं के राजा हैं। पूजा न होने से ऐसा न हो, वे क्रुद्ध हो जायँ। क्रुद्ध होकर उन्होंने वर्षा बन्द कर दी, तो हमारा तो सर्वनाश हो जायगा।"

इस पर दूसरे भगवत् विश्वासी गोप बोले—"अरे, तुम लोग इतने दिन से कृष्ण के बल पुरुषार्थ को देख रहे हो, फिर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता। जिसने बाल्यकाल में ही पूतना, तृणावर्त्तासुर, शकटासुर आदि को मारा अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर आदि दैत्यों को बलदेवजी के साथ मारा, इतने प्रचंड पराक्रमी कालिय को यमुना हृद् से निकाला, क्या वह इन्द्र के मान को मर्दन नहीं कर सकता। क्या वह क्रुद्ध हुए शक्र के गर्व को खर्व करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिसने हम सबकी आँधी से वायु से तथा वर्षा से रक्षा की। जो दावानल को बातकी बात में पान कर गया, उसके आगे इन्द्र क्या करेगा। अब सब शङ्का को हृदय से निकाल दो और कृष्ण के कहे हुए देवता की निर्भय और निःशङ्क होकर पूजा करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार गोपों ने श्रीकृष्ण भगवान् की आज्ञा मानकर इन्द्र यज्ञ के स्थान में गिरिराज गोवर्धन की पूजा का निश्चय किया।"

छप्पय

व्यञ्जन सरस बनाइ शैलकूँ भोग लगाश्रो।
भोजन द्विजनि कराइ प्रेमतैं माल उड़ाश्रो॥
पावैं सब परसाद महोत्सव मधुर मनावैं।
गिरि परिकम्मा करें गीत गोपी मिलि गावैं॥
मेरी तो सम्मति जिही, जिह मत मम मतिमहँ खरो।
सुनि सब बोले गोप तब, कृष्ण कहै सोई करो॥

गिरिराज गोवर्धन की पूजा

(६४६)

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद्बृहद्वपुः ॥*
(श्री भा० १० स्क० २४ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

त्यागि इन्द्र मख गोप करें पूजा गिरिवरकी।
भई विप्र, गिरि धेनुयज्ञमहँ सम्मति सबकी॥
लागे छप्पन भोग श्याम गोवरधन बनिकें।
करि करि लम्बे हाथ उड़ाये व्यंजन तनिकें॥
खिचरी, पूरी, मिठाई, सटकें सट सट साग सब।
देखि देव प्रत्यक्ष गिरि, भयो सबनि विश्वास अब॥

भगवत् वचनों में विश्वास यही साधन की प्रथम और अंतिम सीढ़ी है। जो कर्म करे, भगवान् की आज्ञा समझकर करे। उसमें सुख हो उसे भगवान् को सौंप दे, दुख हो तब भी उन्हीं

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! गोपों को विश्वास दिलाने के निमित्त नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने एक अत्यंत डील डौल वाला वृहद्काय दूसरा स्वरूप धारण किया और यह कहते हुए कि मैं ही गिरिराज गोवर्धन पर्वत हूँ, उन्होंने सब भेंट पूजायें ग्रहण कीं।"

की शरण में जाय। ऐसे अनन्य उपासक के दुख सुख को मेंटकर श्यामसुन्दर परात्पर सुख देते हैं। जीव को रूढ़ियों में मोह हो गया है। वह अलौकिक वैदिक परम्पराओं को त्यागकर लोक वेद से परे निस्त्रैगुण्य होना चाहता नहीं। उन्हीं लोक मर्यादा आदि में फँसा रहना चाहता है। जब तक जीव सर्व धर्मों का मोह छोड़कर एकमात्र श्रीहरि का आश्रय नहीं लेता, तब तक श्रीहरि उसके सम्मुख प्रकट नहीं होते। जब तक देव प्रत्यक्ष नहीं होते, तब तक साधना पूरी नहीं होती अतः अपने को सर्वात्मभाव से भगवान् के अर्पण कर देना यही जीव का परम पुरुषार्थ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब इन्द्र याग की बात को तो गोप गण भूल गये। अब सभी गोवर्धन की पूजा की तैयारियाँ करने लगे। यज्ञों में इन्द्र का मद चूर्ण करना था। इसलिए उन्होंने ऐसी ऐसी अटपटी बातें स्वीकार कर लीं। उन्होंने जैसा कहा वैसा उन्होंने काम किया। सब लोग भाँति भाँति के व्यंजन बना बनाकर छकड़ों में लाद लादकर गिरि गोवर्धन पर्वत के समीप आये। वहाँ आकर विधिवत् संकल्प किया, स्वस्तिवाचन पूर्वक गिरिराज की षोडशोपचार पूजा की। पूजा के समय ही ब्राह्मणों ने कहा—गंगाजल स्नानं समर्पयामि।" हे व्रजराज! गिरिराज को अब गंगाजल से स्नान कराइये।"

तब घबराकर नन्दजी बोले—"ब्राह्मणो! गंगाजल की शीशी लाना तो हम भूल ही गये। अब क्या किया जाय, कहो तो जल से ही स्नान करावें।"

इस पर भगवान् बोले—"पिताजी! गंगादेवी तो सर्व व्यापक हैं। हमारा हार्दिक प्रेम होगा तो गंगाजी यहीं प्रकट हो जायँगी। जब प्रेम से परमात्मा प्रकट हो जाते हैं, तो गंगादेवी' प्रकट न होंगी। आप प्रेम पूर्वक मन से गंगाजी का ध्यान' करें।

यह सुनकर ब्रजराज मन से पतितपावनी भगवती सुरसरि का ध्यान करने लगे। मन से ध्यान करते ही प्रभु की प्रेरणा से मानसी गंगा का स्रोत वहीं गिरिगोवर्धन से निकल पड़ा। काँच के समान स्वच्छ सुन्दर निर्मल नीर वहाँ हिलोरें लेने लगा, सबने कहा—"भैया! कनुआ का देवता तो बड़ा चमत्कारी है, देखो यहाँ गंगाजी बुलालीं। अब हम सब सदा इसी की पूजा किया करेंगे, किन्तु कनुआ कहता था, देवता प्रत्यक्ष प्रकट होगा, सो अब तक प्रत्यक्ष तो प्रकट नहीं हुआ।"

ब्राह्मणों ने जब पंचामृत स्नान, गंधस्नान, शुद्ध गंगाजलस्नान कराके, यज्ञोपवीत वस्त्र, अलंकार, धूप तथा दीप आदि देकर सब गोपों से नैवेद्य रखने को कहा, तो समस्त गोपों को विश्वास दिलाने के निमित्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं अपना एक विशालकायरूप प्रकट किया। बड़ा भारी डील डौल का स्वरूप बनाकर पर्वत के ऊपर खड़े होकर कहने लगे—"मैं ही गिरिराज गोवर्धन पर्वत हूँ।"

एक रूप से तो भगवान गोपों में ही मिले थे, दूसरे रूप से गोवर्धन बने पर्वत पर खड़े थे। गोप रूप से अब अपने सभी ब्रजवासियों से बोले—"अरे, देखो! कैसा आश्चर्य है भाइयो! तुम्हारे प्रेम को धन्य है, तुम्हारी पूजा से प्रसन्न होकर गिरिराज स्वयं प्रकट हो गये हैं। उन्होंने मूर्तिमान होकर हम सब पर कृपा की है। हमारा बड़ा सौभाग्य है।"

गोपों ने देखा ये गिरिराज देखने में रूप रंग में, चितवन में कनुआ की ही भाँति दिखाई पड़ते हैं आश्चर्य चकित होकर गिरिराज की उस मनोहर मूर्ति को देखते के देखते ही रह गये। बार बार कहते—कनुआ के देवता का स्वरूप भी कनुआ की ही भाँति है।"

यह सुनकर भगवान् कहने लगे—"अरे, तुम लोग इतने

विस्मित क्यों हो रहे हो। ये गोवर्धननाथ सर्वशक्तिमान हैं। ये जैसा चाहे वैसा रूप धारण कर सकते हैं। ये पूजा करने वालों को इच्छानुसार फल देते हैं और जो वनवासी इनकी पूजा नहीं करते, निरादर करते हैं उन्हें ये यथेष्ट दंड देते हैं। नष्ट कर देते हैं इसलिये आओ हम सब मिलकर अपना और गौओं का कल्याण करने वाले इस प्रत्यक्ष देव को प्रणाम करें।"

यह कहकर अपने आप ही अपने रूप को प्रणाम करने लगे। समस्त गोपों ने भी उनका अनुकरण किया।

तब ब्राह्मणों ने कहा—"अच्छी बात है अब भोग लगाओ।"

यह सुनकर सभी गोप, पूड़ी, हलुआ, खीर, मोहन भोग आदि पदार्थ गोवर्धन के आगे रखने लगे। गिरिराज ने अब प्रसाद पाना प्रारम्भ किया। वे एक दो लड्डू नहीं उठाते। पूरी-की पूरी लड्डूओं की डलिया उठाई, सबको एक साथ चटकर गये। हलुए का पूरा थाल उठाया और गप्पा मार गये। खीर की कढ़ाई की कढ़ाई को सर्र से सपोट गये। सामने साग पड़ गया तो साग का ही सफाया कर दिया। रायते की हंडी आई तो उसे ही पी गये। गोपों ने देखा—"भैया! यह ऐसे ही खाता रहा, तो हमारे लिये तो कुछ प्रसाद छोड़ेगा नहीं। इसलिये कुछ लड्डूओं की डलियों को हलुए के थारों को गाड़ों के नीचे सरकाने लगे। गोवर्धननाथ ने लम्बे हाथ किये और गाड़ों के नीचे से ही लड्डूओं के टोकरों को उठाने लगे। तब गोप आपस में कहने लगे—"आनो और आनो अर्थात् और लाओ और लाओ।" इसीलिये गोवर्धन के समीप आनौर नामक ग्राम अभी तक विद्यमान है।

नन्दजी देख रहे थे, कि यह देवता तो बड़ा खाने वाला है, इसका मुँह बंद ही नहीं होता। इसकी चाल में भी शिथिलता नहीं कब का भूखा है यह।

भगवान बोले—"देखो, तुमने बहुत दिनों से इसकी पूजा नहीं की, यह देवता बहुत दिनों का भूखा है, इसे भर पेट खाने दो, खाकर यह फिर तुम्हारे सब पदार्थों को ज्यों का त्यों पूरा कर देगा।"

नन्दजी ने कहा—"ना, भैया ! हम रोकते थोड़े ही हैं भर पेट खाले।"

इधर गोवर्धन देव बिना रुके उड़ा रहे थे। खाते खाते वे रुक गये और बार बार दाँतों को जीभ से कुरेदने लगे। नन्दजी समझ गये, कोई लड्डू गिरिराज के दाँतों में हिटक गया। इस पर नन्द जी ने कहा—"अरे, भैया, कोई दाँत कुरेदने के लिये नीम की सींक दे दो।"

यह सुनकर कुछ ग्वाल बाल सींक लेने दौड़े। इसपर भगवान् बोले—"अरे, सारे ओ ! सींक से उसके इतने बड़े मुख में क्या मालूम पड़ेगा। कोई बड़ी सी बल्ली उठाकर दो जिससे दाँत कुरेद सके।" यह सुनकर सब हँसते हँसते लोट पोट हो गये। एक ने बड़ी सी बल्ली गोवर्धन देव के हाथ में थमा दी। उन्होंने बल्ली से जो दाँतों को कुरेदा, तो मनो हलुआ नीचे गिर पड़ा फिर वे व्यञ्जनों को उड़ाने लगे।"

पेट भरकर प्रसाद पाकर गिरिराज बोले—"गोपों ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ, तुम जो चाहो, सो वर माँग लो।"

यह सुनकर सभी ने हाथ जोड़कर कहा—"हे गिरिराज ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये, कि हमारा यह कनुआ सदा सुखी बना रहे। हम सब सदा इसे प्रसन्न चित्त देखते ही रहें।"

'तथास्तु' कहकर गिरिराज अन्तर्धान हुए। फिर गोपों के पदार्थों के पात्र ज्यों के त्यों भर गये। गोवर्धननाथ के प्रसाद से गोपों ने पहिले ब्राह्मणों को तृप्त कराया। उन्हें सुन्दर सुन्दर

वस्त्र, आभूषण, सुवर्ण मुद्राएँ तथा गोएँ दानमें दीं। फिर गौओं को हरी हरी घास खिलायी। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। तब भगवान् बोले देखो, भाई पहिले गिरिराजकी परिक्रमा और देलो, तब सब मिलकर प्रसाद पावेंगे।"

यह सुनकर सभी गोप गोपी बड़े उत्साहके साथ सज बजकर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर गोवर्धनकी परिक्रमा करने लगे। सबने पूरी परिक्रमा दी। परिक्रमा करके सभीने मानसी गङ्गाके आस पास डेरा डाले, फिर सबने गोवर्धन नाथकी जयजयकारसे आकाश मण्डलको गुँजा दिया। हाथ पैर धोकर सबने प्रेमपूर्वक प्रसाद पाया। फिर सब विश्राम करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन दिनों समस्तगोप गिरिराज की तलहटीमें ही अपनी गौओंके सहित ठहरे हुए थे। इस प्रकार भगवान्की आज्ञा मानकर उन सबने विधिपूर्वक गोवर्धन का गौओं और ब्राह्मणों का पूजन किया, प्रसाद पाया आराम किया और श्रीकृष्णचन्द्रको साथ लेकर अपने निवास स्थान पर आ गये। अब जैसे इन्द्रने ब्रजवासियों पर कोप किया, उस कथाको आगे कहूँगा।

छप्पय

पूजाके ईं समय मानसी प्रकटीं गङ्गा।
सुन्दर निर्मल नीर निकट गिरि तरल तरङ्गा॥
गोवर्धनकूँ पूजि द्विजनि परसाद पवायो।
परिकम्मा पुनि करी हर्ष हियमहँ अति छायो॥
पायो प्रेम प्रसाद पुनि, पय पी सब ब्रजमहँ गये।
गिरिवर पूजातें सकल, प्रमुदित ब्रजवासी भये॥

इन्द्र का व्रजवासियों पर कोप

(६५०)

इन्द्रस्तदाऽऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोपसः ॥*

(श्री भा० १० स्क० २५ अ० १ श्लो०)

छप्पय

इत सुरपति जब सुनी नन्द मम भाग न दीयो।
समुझ्यो निज अपमान कोप गोपनिपै कीयो ॥
सोचे सुरपति कृष्ण काल्हिको छोरा छोटो।
मानि गोप तिहि बात काज कीयो अति खोटो ॥
अच्छा इनके गर्वकूँ, अबई खर्व कराउँगो।
वर्षा विकट कराइकें, व्रजकूँ आज डुबाउँगो ॥

भगवान्ने छोटेसे लेकर बड़ेतक सबके मनमें ऐसा अभिमान भरदिया है, कि वह अभिमान करने वालेको भूलकर अपनेको ही सब कुछ समझता है। भगवान्के बिना किसीकी सत्ता नहीं जिसकी सत्ता है, उसे अभिमान है। संसारमें ऐसा कोई प्राणी नहीं

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब इन्द्र ने देखा, कि इन व्रजवासी गोपोंने मेरी पूजा करनी छोड़ दी है जिनके श्रीकृष्ण ही एकमात्र नाथ हैं तो उन गोपों पर देवराज-ने अत्यन्त कोप किया।"

दिखायी देता, जिसे अपनेपन का अभिमान न हो छोटे से छोटे को, दरिद्र से दरिद्र को दुखी से दुखी को देखो पूछो। वही कहेगा हम किसी से कम थोड़े ही हैं। चींटी को दबाओ वह भी क्रोध करके काटती है, वह भी अपमान से क्रुद्ध हो जाती है। क्रोध का कारण है मिथ्याभिमान। हमने देह को ही आत्मा मान रखा है। आत्मा तो सबसे श्रेष्ठ है ही उसी की सत्ता से सभी अपने को श्रेष्ठ समझते हैं किन्तु वे भ्रमवश देह को ही आत्मा मानकर उसके सुख दुख में सुखी दुखी होते हैं। आत्मा का कोई क्या अपमान कर सकता है, वह तो मान अपमान से रहित है किन्तु शरीर को आत्मा मानने वाले अज्ञान वश देह के अपमान को ही अपना अपमान समझते हैं। क्रोध करते हैं, दुखी होते हैं। यही अज्ञान है यही भ्रम है। संसार में क्रोध किया जाय, तो यह बन्धन का कारण है, यदि वही क्रोध भगवान् के साथ किया जाय, तो बन्धन मुक्ति का हेतु हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रजवासी गोपों ने इन्द्र की वार्षिकी पूजा न करके गोवर्धन की पूजा की तो इस बात से इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ। किन्तु जिनके रक्षक नन्दनन्दन हैं, जिनके सुख दुख का भार विश्वम्भर ने वहन कर रखा है, उनका कोई अनिष्ट ही क्या कर सकता है।"

इन्द्र को बड़ा अभिमान हो गया था, वह अपने को ही सबसे श्रेष्ठ ईश्वर समझता था। वह सोचता था. मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ, मेरे समान और कौन है। उसने सोचा—"ये गोप मेरे प्रभाव को भूल गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गत वर्षों से मैंने समय पर यथेष्ट वर्षा की है। जिससे ब्रजवन में बहुत घास हो गयी। गोपों की गायें बढ़ गयी हैं, मोटी हो गयी हैं, अधिक दूध देने लगी हैं। अधिक आय होने से गोप धनी हो गये हैं। धन बढ़ने से मद बढ़ गया है। ढिठाई आ गई है। प्रभुता पाकर सभी

को मद हो जाता है। इन गाँव के गँवार गोपों की मूर्खता तो देखो एक छोटे से बालक कृष्ण की बात मानकर मुझ इतने बड़े देवता का अपमान कर डाला। इसलिये मैं इन सबके मद को चूर करूँगा। इन्हें इनके किये का फल चखाऊँगा।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! मेघों के गण होते हैं। जो समय समय पर इन्द्र की प्रेरणासे वर्षा किया करते हैं। उन गणों में एक सांवर्तक नामक गण हैं। ये सदा बन्द रहते हैं। जब प्रलय का समय आता है, तब ये खोले जाते हैं। प्रलय के समय बहुत काल तक तो वर्षा ही नहीं होती, प्रलय कालीन प्रचंड सूर्य तपते हैं जिनके ताप से सब चराचर जीव नष्ट हो जाते हैं, फिर हाथी की सूँड़ की धारा के समान सांवर्तक नामक मेघ वर्षा करते हैं, जिससे सातों समुद्र एक हो जाते हैं। पृथ्वी जलमयी बन जाती है। सांवर्तक मेघ बीच में कभी नहीं खोले जाते, किन्तु आज तो इन्द्र क्रोध के कारण आपेसे बाहर हो रहे थे। उन्होंने सांवर्तक मेघों को बुलाकर कहा—"देखो, तुम लोग जाओ गिरिराज गोवर्धन पर्वत पर इतनी वर्षा करो कि उसे जल से डुबा दो। नन्द का जितना व्रज है, सबका नाश कर दो। वहाँ के गोपों की एक भी गौ न बचने पावे न कोई गोप ही। सबका सर्वनाश कर दो। जहाँ नन्दादि—गोपों ने डेरे डाल रखे हैं, उसे जलमग्न बना दो।"

सांवर्तक मेघों ने कहा—"प्रभो! हम तो प्रलयकाल के समय खोले जाते हैं। सब इन्द्र हमें खोलते भी नहीं कल्प के अन्त के जो चौदहवें इन्द्र होते हैं, वे ही हमें आज्ञा देते हैं, तब हम प्रलय करते हैं।"

इन्द्र ने कहा—"तुम लोग हो तो मेरे ही अधीन। बीच में भी काम पड़ने पर तुम्हारा उपयोग किया जा सकता है। इस समय ऐसा ही अवसर आ गया है।"

मेघों ने पूछा—"ऐसी क्या बात हुई ?" यह सुनकर इन्द्र बोला-बात क्या हुई। ये गोप एक तो वैसे ही मूर्ख हैं, फिर इनमें एक बड़ा बतूना बालक उत्पन्न हो गया है। वह छोकरा कुछ पढ़ा लिखा तो है नहीं, परन्तु अपने को लगाता बहुत बड़ा है, अभिमान का तो:मानों वह पुंज ही है। ज्ञान से तो वह परे है। अपने को बड़ा बुद्धिमान समझता है। उस छोकरे ने गोपों को बहका दिया है, कि तुम इन्द्र की पूजा मत करो। बताओ अब ये गोप जीवित रह सकेंगे। मर्त्यधर्मा कृष्ण की बात मानकर मुझ अमराधिप का इन अज्ञोंने अपमान किया है।"

सांवतर्क मेघों ने पूछा"—श्रीकृष्ण ने कुछ समझकर ही तो आपकी पूजा वन्दकी होगी ?"

इन्द्र ने क्रोध में भरकर कहा—"अरे, उसमें कुछ समझने सोचने की शक्ति ही होती, तो ऐसा अनर्थ करता ही क्यों ? वह मर्त्यलोक का रहने वाला मुझ स्वर्गाधिप को कुछ समझता ही नहीं। गोप भी उसके एक दो छोटे मोटे चमत्कारों को देखकर उसके प्रभाव में आ गये हैं। गोप भी समझने लगे हैं, कि जब हमारे रक्षक श्रीकृष्ण हैं, तो इन्द्र हमारा क्या करेंगे। यह तो वही बात हुई कि मेढ़क चूहे के बल पर सर्पका अपमान करे। जैसे कोई सुदृढ़ नौका के बिना केवल कुत्ते की पूँछ पकड़कर समुद्र को पार करना चाहता हो, जैसे कोई मन्दमति पुरुष ब्रह्मविद्या को छोड़कर अन्य नाम मात्र की अदृढ़ नौका रूप कर्ममय यज्ञों से इस भवसागर को पार करना चाहता हो, उसी प्रकार कृष्ण का आश्रय लेकर ये सब गोप अपने को सुरक्षित मानते हैं। मैं इन्हें इनकी करनी का फल चखाऊँगा। इनसे अपने अपमान का बदला लूँगा। तुम लोग निःशंक होकर जाओ और इन कृष्ण के द्वारा

अभिमान बढ़ाये हुए धनोन्मत्त ग्वालों के ऐश्वर्य मद को धूल में मिलादो। इन सब के पशुओं का संहार कर दो।"

सांवर्तक मेघों ने कहा—"तो प्रभो! हम अकेले तो वहाँ जायँगे नहीं, एक तो हम श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानते नहीं, दूसरे आप हमें असमय में भेज रहे हैं। अतः आप भी हमारे साथ चलें।"

इन्द्र ने कहा—"तब तक तुम चलो, मैं तुम्हारे पीछे पीछे ऐरावत हाथी पर चढ़कर उनंचास मरुद्गणों को साथ लेकर आता हूँ, तुम वर्षा करना मरुद्गण तीक्ष्णवायु चलावेंगे' व्रजका नाश निश्चित हो जायगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मेघगण तो इन्द्र के अधिकार में ही होते हैं। जब इन्द्र ही उन्हें ऐसा अनर्थ करने के लिये प्रेरित कर रहे हैं, तो फिर वे क्या करते। अब तक तो वे प्रलय कालके लिये एक स्थान में बन्द थे। जब इन्द्रने स्वयं ही चाभी लेकर ताला खोल दिया, तो वे सब बन्धनमुक्त हो गये और व्रजपर जाकर मूसलाधार पानी की वर्षा करने लगने लगे। उनकी धारायें हाथी की सूँड़के समान तथा खम्भोंके समान मोटी थीं। मेघोंकी गड़ गड़ान, बिजली की तड़ तड़ान से व्रजवासी अत्यन्त भयभीत हो रहे थे। वर्षा निरन्तर हो रही थी। प्रचण्ड पवन से प्रेरित—होकर मेघ जल के सहित बड़े ओलों की भी वर्षा करने लगे। निरन्तरकी वृष्टि से समस्त सम विषम भूमि एक-सी हो गयी। सब जल से भर गया, जिधर दृष्टि दौड़ाओ उधर जल ही जल दिखायी देता था। यह देखकर गोप ग्वाल परम विस्मित हुए।

छप्पय

करयो इन्द्र अति कोप भयङ्कर मेघ बुलाये।
करिबेवारे प्रलय मेघ सांवर्तक आये॥
बोले तिनतैं शक्र—शीघ्र तुम व्रजमहँ जाओ।
गोपनिको धन धान धेनु सर्वस्व डुबाओ॥
गरजत तरजत घन चले, प्रलय सरिस बरषा करें।
प्रेरित पवन प्रचण्ड हिम, नर, पशु पच्छिनिपै परें॥

गोवर्धनधारी वनवारी

(६५१)

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥*

(श्री भा० १० स्क० २५ अ० १८, १९ श्लो०)

छप्पय

थर थर काँपें गाय हाय सब लोग पुकारें ।
ठिठुरत इत उत फिरत कहत—हरि हमें उबारें ॥
अनत शरन नहिं लखी शरन सब हरिकी आये ।
शरनागतके निकट दीन है वचन सुनाये ॥
भक्तवछल भगवान् हे, हरि हम सबके दुख हरो ।
कुपित इन्द्रके कोप तैं, प्रणतपाल रक्षा करो ॥

जीव भगवान् शरणमें आनेसे डरता है, अपना सर्वस्व सौंपनेमें हिचकता है, तनिकसी विपत्ति आनेसे ही घबरा जाता है। समर्पणमें सन्देह करने लगता है। जो सर्वात्मभावसे

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी इन्द्रके कुपित होकर वर्षा करने पर सोच रहे हैं—"इसलिये जिनका मैं ही एक मात्र आश्रय और रक्षक हूँ, उन उन शरणागत व्रजवासियोंकी मैं अपनी योग सामर्थ्यसे रक्षा करूँगा, यही मेरा धारण किया हुआ व्रत है। ऐसा

समर्पण कर देते हैं, भगवान् उनके सुख दुख की चिन्ता स्वयं करते हैं। जीव अविश्वास न करे, कि मुझे तो लाख रुपये का काम है यहाँ तो एक पैसा भी नहीं कैसे काम चलेगा ? यदि तुमने सर्वात्मभाव से अपने को भगवान् पर छोड़ दिया है, तो उन लक्ष्मीपति के लिये लाख करोड़ क्या बात है। जो वसुन्धरा के स्वामी हैं, वे चाहे जहाँ से वसु-धन-दे सकते हैं। उनकी तो दृष्टि में सृष्टि है। उनके लिये कहीं भी कभी भी कुछ भी असम्भव नहीं। उनके लिये सब संभव है। वे जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कर सकते हैं। अचर को चर और चर को अचर कर सकते हैं। मायापति के आगे असंभव कुछ भी नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गोवर्धन पर्वतकी तलहटीमें ठहरे हुए गोपों के ऊपर सांवर्तक नामक मेघों ने आकर सहसा मूसला धार वृष्टि आरम्भ करदी। सभी सुख पूर्वक सो रहे थे, आनन्द विहार कर रहे थे, प्रेम की कमनीय क्रीड़ायें कर रहे थे। बाल बच्चों तथा स्त्रियों के साथ हँसी विनोद की बातें कर रहे थे, उसी समय बड़े वेग से वर्षा होने लगी। पहिले तो उन्होंने समझा—"साधारण जल है, निकल जायगा, किन्तु जब देखा बड़ी बड़ी मोटी धारें निरंतर बह रही हैं। प्रतीत ऐसा होता है। आकाश में बड़े बड़े छेद हो गये हैं, जिनमें आकाश गंगा फूट पड़ी है।

कुछ ही काल की वर्षा से तथा साथ ही प्रबल प्रचण्ड पवन के प्रलयकारी झोकों से गोप, गोपी, ग्वाल, बाल तथा गायें काँपने लगीं। गोपियाँ अपने बच्चोंको गोद में छिपा कर रोने लगीं धारा वाहिक वृष्टि से व्याकुल हुई गौएँ अपने बछड़ों को अपने अंगों में

सोचकर भगवान् ने लीला से ही अपने एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर इस प्रकार उठा लिया, जिस प्रकार बालक छत्राक पुष्पको उठाते।"

सटाने लगी। सिर को मोड़े हुए काँपती हुई वे ऐसी लगती थीं मानों वे सिकुड़ कर अपने अङ्गों में घुस जाना चाहती हों। तलहटी में चारों ओर जल भर गया था। छकड़ों के ऊपर तक जल आ रहा था, गौओं के छोटे छोटे बच्चे जल के प्रवाह में बहने लगे। बछड़ों का मुख शीत और भय के कारण दयनीय हो रहा था। वायु के वेग से वे केले के पत्ते के सदृश थर थर काँप रहे थे।

गोपियाँ आपस में कहने लगीं—"हाय! यह सब इन्द्र के यज्ञ न करने का फल है। हमने इस वर्ष इन्द्र की पूजा नहीं की इसी से कुपित हो कर वे वर्षा कर रहे हैं। अवश्य ही वे हमारा सर्वनाश कर देंगे। हाय! गोपोंने इन्द्र का यज्ञ छोड़ कर गोवर्धन का पूजन क्यों किया। खाने के लिये तो गोवर्धन देवता ने ऐसा विकट वेष बना लिया था, अब रक्षा करने क्यों नहीं आता। जिसका देव है उसी की बात मानेगा, कृष्ण के समीप चलें यह कह कर सब गोपियाँ रोती हुई श्रीकृष्ण के छकड़े के समीप आईं। गोप भी भयभीत होकर श्रीहरि की शरण गये। गौओं ने भी डकराते हुए चारों ओर से श्रीकृष्ण को घेर लिया। सभी एक स्वर में कहने लगे—"हे व्रजचन्द्र! हे नन्दनन्द! हे प्रणतदुख भंजन। हे भक्त वत्सल! हे गोकुलेश! हे व्रजके एक मात्र जीवनधन श्यामसुन्दर! हमारी इस विपत्ति से रक्षा करो, रक्षा करो। हम तुम्हारी शरण में हैं।"

गोप गोपी ग्वाल बाल तथा गौओं को प्रचण्ड वायु ओलों के सहित घनघोर वर्षाके कारण पीड़ित और अचेत देखकर भगवान् सब कुछ समझ गये, कि यह सब इन्द्र की करतूत है। उसी ने कुपित होकर यह कृत्य किया है। इस समय वर्षा का तो कोई काल नहीं है। इसे अपने इन्द्रपने का बड़ा अभिमान है। मैं इसके अभिमान को मेटूँगा।"

इधर भगवान् तो यह सोच रहे थे, उधर नन्दजी की दशा विचित्र थी, वे सोच रहे थे—"हमने इन्द्र की पूजा न करके अपने आप यह विपत्ति मोल लेली। इन्द्र की भी पूजा कर लेते। गोवर्धन को भी पूजलेते। वे हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे— "हे सुरपति! आप हमारे अपराध को क्षमा करें। हमें डुबाने का विचार छोड़ दें।"

इसपर भगवान् ने कहा—"पिताजी! आप यह क्या कर रहे हैं। आप अपने इष्ट देव गोवर्धन से प्रार्थना क्यों नहीं करते, वे आपके सब कष्ट को दूर करेंगे।"

नन्दजी ने कहा—"अरे, भैया! गोवर्धन तो हमारी सुनते ही नहीं, उनके सामने ही तो यह सब कृत्य हो रहा है।"

भगवान् ने कहा—"मुझे गोवर्धननाथ ने स्वप्न में बताया था, कि वर्षा हो तो तुम मुझे उठाकर मेरी छतरी बना लेना। मेरे नीचे सब गौओं और ग्वालों को बिठा देना।"

नन्दजी बोले—"अरे भैया! सात कोश लम्बा पहाड़ कैसे उठ सकता है। यह बात तो असम्भव सी है।"

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा—"पिताजी! जो देवता इतना भोजन करलेता है, उसके लिये असम्भव क्या है?"

नन्दजी ने कहा—"अरे, भैया! जल से और अग्नि से किसी का वश नहीं चलता।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े। उन्होंने सोचा—"मैं अपनी योगमाया से असंभव को भी संभव कर दिखाऊँगा। इन्द्र के गर्व को मेटूँगा। अज्ञान वश यह इन्द्र अपने को सब लोकपालों से श्रेष्ठ समझता है नियमानुसार सत्वगुण की प्रधानता होने से देवताओं को अभिमान न होना चाहिये किन्तु अज्ञान वश उनसे ऐसा मद हो गया है। इन्द्र मेरे ऐश्वर्य को भूल गया है। मेरे द्वारा मान भंग होने पर भी उसका कल्याण ही होगा।" यही

सब सोचकर भगवान् ने अपने योग प्रभाव से गोवर्धन पर्वत को छूआ। छूते ही सात कोश लम्बा पर्वत पृथिवी से उछलकर ऊपर उठ गया। भगवान् ने अपने बायें हाथ की उँगली पर उस पूरे पर्वत को धारण कर लिया। उसके नीचे सात कोश लम्बी चौड़ी सुन्दर सी समान गुहा बनगयी। तब भगवान् बोले—"तुम सब अपनी अपनी गौओं को, गृहस्थी को तथा बाल बच्चों और छकड़ों को लेकर इस पर्वत के नीचे आ जाओ। यहाँ तुम्हें कोई भय न होगा।"

भगवान् की बात सुनकर समस्त गोपाल अपनी गौओं तथा सभी वस्तुओं को लेकर पहाड़ के नीचे आ गये। भगवान् ने देखा मेरे अंगुली पर गोवधन धारण करने पर ये सब गोप बड़े चकित हो रहे हैं, तब आप सबसे बोले—"अरे, भाइयो! यह तो सबका काम है। सात 'पाँच की लाकड़ी एक जने का बोझ 'तुम सभी अपनी अपनी लाठियों को लगालो। सभी इसे थामे रहेंगे तो पर्वत गिरेगा नहीं।"

यह सुनकर ग्वाल बालों को बड़ा हर्ष हुआ सबने अपनी अपनी लाठियाँ लगायीं। उन्हें भी अभिमान हो गया, कि गोवर्धन धारण में हम भी श्रीकृष्ण की सहायता कर रहे हैं।

कुछ गोप कहने लगे—"भैया, कनुआ! तुझे पर्वत को उठाये बहुत देर हो गयी है। तू जब तक कुछ विश्राम करले, हम तब तक इसे लिये खड़े रहेंगे।"

यह सुनकर भगवान् हँसे उन्होंने ज्यों ही तनिक हाथ ढीला किया, कि पर्वत गिरने लगा। तब सब बोले—"अरे, भैया! तू मत छोड़ना। तेरा देव तेरी ही बात मानेगा। हमसे इसकी भटक न मिलेगी।"

यह सुनकर भगवान् उसे लिये खड़े रहे।

इसपर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ऊपर से तो पर्वत वर्षा

को रोके हुए था, किन्तु चारों ओर तो वर्षा के कारण जल भर ही गया होगा वह तो नीचे आ गया होगा।"

सूतजी बोले—"महाराज भगवान् ने जल को पृथिवी पर आने ही नहीं दिया। जाज्वल्यमान सुदर्शन चक्र को उन्होंने आज्ञा दी, वह पहाड़ के ऊपर बैठ गया। जैसे अग्नि से लाल हुए तवे पर विन्दु विन्दु जल डालो तो वह तुरन्त जल जाता है, जैसे वड़वानल समुद्र के जल को शोष लेता है, वैसे ही वर्षा के समस्त जल को सुदर्शन चक्र बीच में ही जला देता था। इस प्रकार सात दिनों तक निरन्तर वर्षा होती रही। भगवान् की योग माया के प्रभाव से किसी को यह समय मालूम ही नहीं हुआ। सब बड़े आनन्द से हँसते खेलते आनन्द करते रहे। खीर उड़ाते रहे। यशोदा मैया को बड़ी चिन्ता थी, वह बार बार श्याम सुन्दर के हाथ में मक्खन मलती और पूछती—"बेटा! हाथ दुखने तो नहीं लगा।" श्रीकृष्णचन्द्र हँस जाते और कहते—"मैया! तैंने जो मुझे इतना माखन खिलाया है उसका कुछ भी तो बल होना चाहिये। और सब गोप तो उठते बैठते तथा सोते लेटते भी थे, किन्तु श्रीकृष्ण खड़े ही रहे और उनके सामने उनकी आँखों में आँखें मिलाये गोपराज वृषभानु की एक छोटी-सी गोरी-सी छोरी भी खड़ी थी। वह भी सात दिन नहीं बैठी। जब कोई उससे बैठने को कहता, तो वह कह देती—"स्वप्न में गोवर्धननाथ ने मुझसे कहा है, श्यामसुन्दर के साथ तू भी खड़ी रहना, तू न खड़ी होगी तो कभी श्यामसुन्दर के हाथ से पर्वत गिर जायगा, सब लोग दब जायँगे, बड़ा अनर्थ होगा।" इसलिए मैं सबकी भलाई के लिये खड़ी हूँ। यह सुनकर सब लोग कहते—इन छोरी छोरा की जोरी तो बड़ी सुन्दर है। अवश्य ही इस छोरी में कोई चमत्कार है, तभी तो कनुआ पलक नहीं मारता भूला सा भटका-सा एकटक इसी की ओर देखता हुआ खड़ा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गोपों को तो भगवान् के वचन पर पूर्ण विश्वास था, अतः भगवान् के यह आश्वासन देने पर कि तुम किसी बात का न भय करो न पर्वत गिरने की आशंका करो।' मैं सब की रक्षा करूँगा।" वे सब के सब अपने छकड़ों गौओं, तथा भृत्य, पुरोहित और परिवार के लोगों के साथ आनन्द के साथ सात दिनों तक पर्वत के नीचे बैठे रहे। इतने समय तक अपनी योगमाया के प्रभाव से भगवान् एक ही स्थान पर खड़े रहे। तनिक भी इधर उधर विचलित नहीं हुए।

छप्पय

सुरपति की करतूत समुझि हरि मन मुसकाये।
कुछ चिन्ता मत करो सबनि कूँ वचन सुनाये।
करपै गिरिवर धरयो फूल सम ताहि उठायो।
चक्र सुदर्शन जल सोखन हित शैल पिठायो॥
मैया कर माखन मलें, लकुट लगावें गोप गन।
सात दिवस गिरि कर धरयो, भयो न नेकहु मलिन मन॥

—ॐ—

इन्द्रका अभिमान चूर हुआ

(६५२)

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान्संन्यवारयत् ॥ॐ
(श्री भा० १० स्क० २५ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

प्रलयकालके मेघ शक्तिभर पूरे बरसे।
नीचे गिरिके गोप गाय सब सुखतें निवसे॥
जलतें खाली भये गये सुरपतिके पाहीं।
बोले—बरषा करी नन्दव्रज डूबत नाहीं॥
मद सब उतरयो इन्द्रको, सुनत चकित-सो रहि गयो।
रोके घन सब मज चलो, गिरिधर गोपनितें कह्यो॥

जब तक जीव को अपने बल, पुरुषार्थ का अभिमान है, जब तक वह अपनी अल्प शक्ति के मद में मत्त है, तब तक वह सर्वशक्तिमान् की शरण में नहीं जाता। जब अपनी सब शक्तिको

ॐ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रजी की ऐसी सामर्थ्य को अवलोकन करके इन्द्र को परम विस्मय हुआ। वह गर्वशून्य बन गया। उसने अपने मेघों को वर्षा करने से निवारण कर दिया।"

सम्पूर्ण बल पुरुषार्थ को लगाकर भी अपने संकल्प को पूरा नहीं कर सकता, तब उसका मद उतर जाता है। तब उसे अनुभव होता है, कि मुझसे भी बड़ी कोई शक्ति है। अपने पुरुषार्थ से जीव जब तक हार नहीं मानता, तब तक वह हरि की शरण नहीं जाता; अतः परमात्मा द्वारा पुनः पुनः पुरुषार्थ का विफल होना, यह उनकी कृपा है, अनुग्रह है, परम दया है। भगवान् जिसे अपनाना चाहते हैं, उसके बल, पुरुषार्थ, तप, प्रभाव, धन तथा अन्यान्य मदों को चकनाचूर कर डालते हैं। आँखों में पड़े अभिमान रूपी जाले को वे मानभङ्ग रूप अस्त्र से काटकर ज्ञान रूप आलोक प्रदान करते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टा में जीव का कल्याण निहित है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अमराधिप इन्द्र ने प्रथम सांवर्तक मेघों को भेजा, पुनः उनचास मरुद्गणों के सहित ऐरावतपर चढ़कर वह स्वयं आया। वह खड़ा खड़ा देखता रहा कब गोवर्धन पर्वत के सहित ये सभी गोप डूबते हैं, किन्तु सात दिनों तक निरन्तर ओलों सहित वर्षा होने पर भी एक बूँद पानी भी गोपों के पास नहीं गया। वे आनन्द पूर्वक सुख-से बैठे रहे, अपने नित्य के कार्य करते रहे। मद के कारण वह तो अंधा हो रहा था। अभिमान के वशीभूत होकर जब कोई व्यक्ति अपनी मिथ्या हठ पर अड़ जाता है, तो उसका सब विवेक विलीन हो जाता है, वह सभी उचित अनुचित उपायों से अपने हठ को पूरा करना चाहता है। इन्द्र ने सोचा—यदि वर्षा के कारण गोपवंश नष्ट नहीं होता, तो मैं अपने अमोघ वज्र द्वारा इन सबको नष्ट कर डालूँ। मेरा वज्र महातपस्वी दधीचि की योगतपोमय अस्थियों से निर्मित है। यह कभी व्यर्थ होने का नहीं। इन नन्दादि गोपों को इनके अभि-मान का फल तो चखाना ही चाहिये।" यही सब सोचकर उसने

अपना अमोघ अस्त्र गोवर्धन के ऊपर चलाने को ज्यों ही उठाया, त्यों ही उसका हाथ स्तम्भित रह गया। उसका संकल्प नष्ट हो गया। सम्पूर्ण शक्ति नष्ट हो जाने से उसका इन्द्रपने का अभिमान चूर हो गया। तुरन्त उसने मेघों को वर्षा करने से रोक दिया और मन ही मन श्रद्धा भक्ति के सहित गुरुप्रदत्त श्रीकृष्णमन्त्र जाप करने लगा। मन ही मन वह समाहित चित्त से श्रीकृष्ण की शरण में गया। निर्व्यलीक—निराभिमान-होकर जब वह प्रपन्न हुआ, भगवान् की शरण गया, तब उसे तन्द्रा-सी आ गयी। उसे तन्द्रावस्था में यह सम्पूर्ण विश्व कृष्णमय दिखायी दिया। उसे चराचर विश्व में बाँसुरी बजाते वनमाला धारण किये, मोर के पङ्खों का मुकुट पहिने हुए द्विभुज श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण दिखायी दिये। वे अपनी शक्ति के सहित नाना प्रकार की कमनीय क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। अब उसे चेत हुआ। वह समझ गया, मैंने मूर्खतावश निखिल-कोटिब्रह्माण्डाधिनायक श्रीनन्दनन्दन का अपमान किया है। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। इसी भावना से वह मन से पुनः पुनः प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम करने लगा। प्रपन्न समझकर भगवान ने तुरन्त उसे अभय कर दिया। उसका स्तम्भित हुआ हाथ अच्छा हो गया, मेघ और मरुद्गणों के साथ वह लज्जित होकर स्वर्गको चला गया मेघों के हट जाने से आकाश स्वच्छ हो गया। वायु शान्त हो गयी। सूर्यदेव चमकने लगे। धूप होने से जाड़ा भी जाता रहा। बड़ा ही सुहावना समय हो गया। उस समय गोवर्धन को धारण किये ही किये नन्द-नन्दन नन्दादि समस्त गोपों से बोले—"आप लोगों की पूजा से प्रसन्न होकर गोवर्धन ने कैसी कृपा की। इतनी वर्षा होने पर भी एक बूँद जल हमारे समीप नहीं आया। अब तो वर्षा भी निकल गयी, सूर्य भी उदय हो गये। अब किसी प्रकार का भय नहीं रहा।

तुम सब निर्भय होकर अपने स्त्री, बाल बच्चे गोधन तथा अन्यान्य धनों के सहित छकड़ों को लेकर पर्वत के नीचे से निकल कर बाहर हो जाओ। अब गिरिराज गोवर्धन लेटना चाहते हैं, उन्हें भी कुछ कुछ निद्रा-सी आने लगी है।"

यह सुनकर घबड़ाकर गोप कहने लगे—"अरे, भैया! अभी से गोवर्धन को निद्रा आ गयी, तो हम सब तो चकनाचूर हो जायँगे। अभी हाथ को ढीला मत करना। डाँटे रहना। ऐसा न हो गोवर्धन के सोते ही हम सब भी इसके नीचे सदा के लिये सोते रह जायँ। यद्यपि अब वर्षा नहीं हो रही है, फिर भी नद-नदियों का जल तो अभी उमड़ ही रहा है।"

भगवान् बोले—"अजी, नहीं, जब तक तुम सब निकलकर बाहर न होगे, तब तक मैं हाथ ढीला नहीं कर सकता। अब बाहर कोई भय की बात नहीं। धूप होने से भूमि भी सूख गयी, अब तक जो प्रचण्ड वायु बह रही थी, वह भी शान्त हो गयी, नदियों का जल भी उतर ही गया है। अब सब बाहर हो जाओ।"

भगवान की आज्ञा पाकर समस्त गोपगण अपने अपने छकड़ों पर सब सामान लादकर स्त्री, बच्चे तथा गौओं को साथ लेकर पर्वत के नीचे से निकले। भगवान् वहीं से खड़े खड़े पूछते थे—"कहो, भाई! किसी की कोई वस्तु छूटी तो नहीं है? छूटी हो तो फिर ले जाओ। यदि गोवर्धन लेट गये, तो फिर वह वस्तु यहाँ की यहीं रह जायगी।"

यह सुनकर लड़के चिल्लाये—"मेरी गेंद रह गयी है, कनुआ भैया! उसे और निकाल लेना।" बुढ़िया चिल्लातीं—"बेटा! मेरी लाठी छूट गयी है।" गोपियाँ चिल्लातीं—"लालजी! हमारी सुई डोरा तथा कपड़ों की डोलची छूट गयी है, उन्हें भी लेते आना।" कोई कहता—"कनुआ भैया! तेरी मुरली है या नहीं देख लेना।"

भगवान् बोले—"मेरी मुरली की तो तुम चिन्ता मत करो। वह तो मेरी फेंट मे खुरसी हुई है, अब मेरे हाथ तो घिर रहे हैं, जिसकी जो वस्तु छूटी हो उसे आकर ले जाओ।"

यह सुनकर सब आकर पुनः अपनी अपनी वस्तुओं को ले गये। लाठियाँ लेकर गोप आये और बोले—"कनुआ भैया! कैसे रखेगा, अब तू इसे। एक साथ रखने से तो तू बीच में ही रह जायगा।"

हँसकर भगवान् बोले—"तुम मेरी चिन्ता मत करो। गोवर्धननाथ ने मुझे सब उपाय बता दिये हैं। तुम सब बाहर निकल चलो।"

गोपों ने कहा—"भैया, हम तो तुझे छोड़कर जायँगे नहीं। हम तेरे पीछे पीछे चलेंगे।"

प्रेम मे सने उनके वचन सुनकर आनन्द कन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र हँसकर बोले—"अच्छी बात है, चलो मैं भी चलता हूँ।" यह कहकर वे आगे बढ़े और बाहर आकर सब गोपों को उसके नीचे से निकालकर समस्त प्राणियों के देखते देखते उस सात कोश के पर्वत को लीला से ही पूर्ववत् उसके प्राचीन स्थान पर रख दिया।

बाहर निकलकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्ण के ऊपर वैसे ही समस्त व्रजवासियों का अत्यन्त प्रेम था, किन्तु आज तो वह प्रेम अनन्त गुणा बढ़ गया। सबके हृदय में प्रेम की हिलोरें मारने लगीं प्रेम जब उमड़ता है, तो आदमी से रहा नहीं जाता। सम्मुख अपने प्रेमास्पद को देखकर चित्त विवश हो जाता है, उसे छाती से चिपटा लें हृदय से हृदय सटाकर मिलले। गोपों ने श्रीकृष्ण का बार बार आलिंगन किया। माताओं ने बार बार उनके मुख को चूमा। लजाती हुईं गोपिकाओं ने श्यामसुन्दर के मस्तकपर दधिअक्षत और कुंकुम के तिलक लगाये।

माखन मिश्री का भोग रखा। गोपियों ने वृषभानुनन्दिनी का भी बहुत आदर किया। उन्हें भी गोदी में लेकर सदा सुहागिनी होने का आशीर्वाद दिया और मन ही मन भगवान् से कुछ गुप्त रहस्यमयी प्रार्थना भी की। प्रथम यशोदाजी ने आकर श्रीकृष्ण को हृदय से लगाया, उनके स्तनों से प्रेम के कारण दुग्ध बह रहा था। रोहिणीजी से भी नहीं रहा गया उन्होंने भी श्रीकृष्ण को बलपूर्वक उठाकर अपने हृदय से लगाया। नन्दजी आ गये। गोपियों ने आंचल सम्हाला, श्रीकृष्ण माता की गोद से खड़े हो गये। ब्रजराज नन्दजी ने उनकी पीठ थपथपायी और बड़े देर तक उन्हें हृदय से चिपटाये रहे। उनकी इच्छा ही नहीं होती थी, कि मैं इसे हृदय से अलग करूँ। प्रेम की यही तो एक अद्भुत गति है, हृदय से सदा मिले रहने पर भी चित्त चाहता है शरीर से भी सदा मिले रहें।

इतने में ही हँसते हुए बलदेवजी आ गये और बोले—"वाह भैया! कनुआ! तैंने तो आज चमत्कार कर दिया।" अपने बड़े भाई की ऐसी बात सुनकर श्रीकृष्ण उनके पैर छूने आगे बढ़े, किन्तु बीच में ही बलभद्रजी ने उन्हें बलपूर्वक पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया। बूढ़ी बूढ़ी गोपियाँ भगवान् को आशीर्वाद देने लगीं वृद्ध उनके गुणों का गान करने लगे। ब्रजाङ्गनाएं उनकी लीलाओं के गीतों को मधुर स्वर से गाने लगीं। सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा।

इधर पृथिवी पर तो ब्रज में इस प्रकार आनन्द हो रहा था, उधर स्वर्ग के देवगण भगवान् के ऐसे अद्भुत प्रभाव को देखकर विस्मित हो रहे थे। वे भी आनन्द में विभोर होकर भाँति भाँति से अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे। आकाश स्थित देव, साध्य, सिद्ध तथा चारणादि आनन्द में

उन्मत्त होकर गिरिधारी के गुणों का गान कर रहे थे। कुछ अमर-गण अपनी अपनी झोलियों में भरभरकर नन्दनकानन के अम्लान कमनीय कुसुमों की विमानों से वर्षा कर रहे थे। शङ्ख, भेरी तथा दुन्दुभी आदि वाद्यों की तुमुल ध्वनि से दशों दिशाएँ मुखरित-सी प्रतीत होती थीं। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और तुम्बुरु, सुदर्शन, चित्राङ्गदादि अनेकों मुख्य मुख्य गन्धर्व गान करने लगे। सारांश यह, कि भू लोक में भुवर्लोक में तथा स्वर्गादि लोकों में इस अद्भुत घटना से अपूर्व आनन्द छा गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार इन्द्रके कोपसे अपने अनुरक्त भक्त अनन्याश्रयी गोपों की सकुटुम्ब श्यामसुन्दर ने रक्षा की। इन्द्र के मद को चूर्ण किया, गोवर्धन की महिमा बढ़ायी और अपनी अद्भुत योगशक्ति भी दिखायी। गोपगण अत्यन्त प्रेम में विभोर हुए चारों ओर से श्यामसुन्दर को घेरकर व्रज की ओर चले और उनके पीछे पीछे अपने ऊँचे ऊँचे जूरों को रंग-बिरंगी ओढ़नियों से ढककर, घूमघुमारे लहँगाओं को हिलाती हुईं नन्दनन्दन की पूर्वोक्त ललित लीलाओं को गाती हुईं गोपियाँ चलीं। इस प्रकार वे सब आनन्द और उल्लास के सहित अपने पूर्व के निवास स्थान व्रज में पहुँचे।"

छप्पय

कुशल सबनि लखि गोप अधिक हियमहँ हरषावें।
हरि आलिङ्गन करें प्रेमतें उर चिपटावें॥
पूजन गोपी करें कृष्णकी कुशल मनावें।
सुरगन सादर सुमन गगनतें वर बरषावें॥
आनँद त्रिभुवनमहँ भयो, सुखी सकल सुर नर भये।
चढ़ि छकरनिपै गोप सब, वृन्दावनकूँ चलि दये॥

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें गोपों की शङ्का

(६५३)

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।
नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥
क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥*
(श्री भा० १० स्क० २६ अ० १३, १४ श्लो०)

छप्पय

प्रभु प्रभावतैं परम प्रभावित भये गोप अब।
नन्द तनय नहिँ श्याम करें शंका मिलि जुलि सब॥
कैसे जाने सात दिवस गोवर्धन धारयो।
कैसे कालिय, क्रूर कुण्डते मारि निकारयो॥
जाके सबई काज अति, अद्भुत परम विचित्र है।
करै अलौकिक काज नित, मधुमय दिव्य चरित्र है॥

जब इस देश में जातीय संगठन सुदृढ़ थे, तब यह कहावत प्रसिद्ध थी, कि जाति से और राम से किसी का वश

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोवर्धन धारण के अनन्तर सब गोपों ने श्री कृष्ण की पुरानी लीलाओं को स्मरण करके उनके प्रभाव को बताते हुए अन्त में कहा—"नन्दजी ! तुम्हारे इस लाल में हमारा अनुराग भी दुस्त्यज है और इसका भी हम पर सहज स्नेह है। बताइये इसका क्या कारण है। फिर आप ही बोले—"कहाँ सात वर्ष का यह बालक और कहाँ महान् गिरिराज गोवर्धन को धारण करना, इन्हीं सब कारणों से हे व्रजराज ! हमें तुम्हारे बच्चे के विषय में सन्देह होता है।"

नहीं चलता। जाति में कोई छोटा बड़ा नहीं। जाति भाई सब एकसे हैं। जाति के किसी भाई से भी अनुचित कार्य हो जाय, तो छोटे से छोटा जाति भाई उसे दण्ड दे सकता है। पहिले बड़प्पन धन से विद्या से या प्रभाव से नहीं माना जाता था, कुलीनता शालीनता तथा सदाचार ही बड़े होने का कारण था। इसीलिये जाति के भय से कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकता था। अपनी जाति में कोई निर्धन है, तो सब मिलकर उसकी सहायता करते उसे भी धनवान बना देते। तब समाज का शासन जातीय पुञ्जों पर ही था। कोई आपस में मन मुटाव की बात हुई, तो उन्हें नित्य प्रति न्यायालयों में नहीं दौड़ना होता था। उचित अनुचित बातें गाँव वालों से, जाति वालों से तो छिपती नहीं, वे लोग सब सोच समझकर यहीं निर्णय कर देते। घर की छोटी से छोटी बात से लेकर बड़ी से बड़ी बात तक का निर्णय जातीय पंचायतों में ही हो जाता। इस कारण जाति का गौरव बना रहता। इसमें वर्णसंकरता, वृत्ति संकरता तथा आचार विचार की संकरता न आने पाती। लोग रोटी बेटी के व्यवहार में विशुद्ध बने रहते। यही सदाचार पालन की प्रधान भित्ति है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो भगवान् ने गोवर्धन को धारण किया, इसीलिये उनके गोवर्धनधारी, गिरधारी, गिरवरधारी तथा गोवर्धननाथ आदि नाम प्रसिद्ध हुए। गोवर्धन धारण लीला के अनन्तर जब गोप व्रज में आ गये तो भी उन्हें वह अलौकिक लीला भूलती नहीं थी। उस समय विपत्ति में तो ऐसा विशेष ध्यान दिया नहीं, अब जब सब विपत्तियों से पार होकर घर आ गये, तो वे इसी घटना के विषय में सोचने लगे। सबको इसी बात का कुतूहल था, कि श्रीकृष्ण की सात ही वर्ष की तो अवस्था है, इस सात वर्ष की अवस्था में सात कोश लम्बे पर्वत को सात

दिनों तक एक उँगली पर धारण किये रहना यह गोप के बालक के लिये संभव नहीं।"

गोपगण श्रीकृष्ण के अमित प्रभाव से तो अनभिज्ञ ही थे। वे उनके अपार ऐश्वर्य को तो जानते ही नहीं थे। उनका तो स्नेह माधुर्ययुक्त था। अतः सभी को शंका होने लगी कि श्रीकृष्णचन्द्र नन्द के पुत्र नहीं हैं। ये हमारी गोप जाति में एक विलक्षण पुरुष कहीं से आ गये हैं।" प्रेम में पग पग पर शंका बनी ही रहती है। कोई प्रभावशाली पुरुष हमसे अत्यधिक प्रेम करे तो हम सोचते हैं—"हम तो इसके योग्य हैं नहीं। ये इतना प्रेम प्रदर्शित करते हैं, तो यथार्थ है या बनावटी।" गोपों के मन में यही शंका हुई, श्रीकृष्णचन्द्र के काम तो अलौकिक है, किन्तु वे हम वन-वासी गँवार गोपों के साथ भाई बन्धु का बर्ताव करते हैं, बराबर का समझकर हमारे हृदय से सट जाते हैं, स्नेह करते हैं। ये हमारी जाति के ही हैं या हमसे विलक्षण कोई देवता हैं।" यह शंका एक के ही मन में उठी हो, सो बात नहीं सभी के मन में समान रूप से ऐसी शंका उठने लगी। श्रीकृष्ण की सभी पिछली लीलाओं का स्मरण करने लगे। ज्यों ज्यों वे उनकी पिछली लीलाओं को याद करते, त्यों त्यों उन्हें और भी शंकायें होतीं।

एक दिन समस्त गोपों ने मिलकर पंचायत की उस पंचायत में यही प्रश्न प्रधान था, कि श्रीकृष्ण चन्द्र हैं कौन ?" एक बूढ़े से गोप ने अपनी सफेद पगड़ी को सम्हालते हुए कहा— पंचो ! ये नन्दजी के लाला श्रीकृष्णचन्द्र हम सबमें विलक्षण हैं। बालकपन से ही इनके समस्त कर्म बड़े विचित्र हैं। इनके ऐसे कर्मों से तो ये देवताओं के भवनों में रहने योग्य हैं, किन्तु ये हम वनवासियों के बीच में सामान्य बालकों की भाँति

निवास करते है, यह इनके लिये प्रतिकूल बात है। तुम लोगों ने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष ही देखा। सात कोश लम्बे इतने भारी पर्वत को ये सात दिनों तक उसी प्रकार धारण किये रहे, जिस प्रकार गजराज कमलपुष्प को बिना श्रम के धारण करता है, अथवा बालक जैसे वर्षाकाल में भूमि में उत्पन्न कुकुरमुत्ता के फूल को छतरी की भाँति धारण करते हैं, अथवा जैसे सिंह आक की चौंड़ी में से निकले बबूले को धारण करता है। सात वर्ष का बालक बिना विश्राम के सात दिन तक एक उँगली पर पर्वत को उठाये रहा, क्या यह कम आश्चर्य की बात है?"

इस पर एक अन्य गोप ने कहा—"भैया, हम तो आरम्भ से ही इस बच्चे में ऐसी अद्भुत अद्भुत अलौकिक शक्तियों का दर्शन कर रहे हैं। अब तो यह सात वर्ष का हो गया; जब यह बहुत छोटा था, दस दिन का भी नहीं हुआ था। तभी इसने अति विकराल रूप रखनेवाली पिशाची क्रूर कर्म करनेवाली राक्षसी पूतना को उसी प्रकार पछाड़ दिया, जिस प्रकार एक सिंहशावक बड़े डील डौलवाली हथिनी को पछाड़ दे। जिस प्रकार मृत्यु बड़े से बड़े शरीर को बात की बात में निर्जीव कर दे उसी प्रकार शैशवावस्था में नेत्रों को मूँदे मूँदे ही उस यातुधानी के स्तनों को पीते पीते उसके प्राणों को हर लिया। उसके तो मृतक शरीर से सात कोश के वृक्ष चकनाचूर हो गये थे। कोई सद्यःजात शिशु इतना कठिन कार्य कर सकता है क्या?"

इस पर दूसरा बोला—"इनकी सब बात सोचो, तो बड़ा विस्मय होता है। जब ये तीन महीने ही के थे, तभी पैर के अँगूठे से इतने भारी छकड़ा को अपने ही ऊपर गिरा लिया

और इनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।"

इस पर अन्य ने कहा—"छकड़े की बात तो उतनी आश्चर्य-जनक नहीं भी हो सकती है, किन्तु तृणावर्त जो इन्हें ऊपर उड़ा ले गया था, यह कितनी विलक्षण बात है। तब ये पूरे एक वर्ष के भी नहीं हुए थे, तभी आँगनमें से इन्हें भभूड़े में बैठाकर असुर उड़ा ले गया इन्होंने गला घोंटकर उसे मार डाला।"

इस पर एक युवक-सा गोप बोल उठा—"अरे, भैया हमें तो वह यमलार्जुन की घटना अभी तक भूलती नहीं। माता ने माखनचोरी के कारण उदर में रस्सी बाँधकर इसे उलूखल में बाँध दिया था। उसे ही गाड़ी की भाँति खींचकर दोनों वृक्षों के बीच से निकला, कि अरड़ड़धम करके इतने बड़े युगादि पेड़ गिर पड़े। यह कम आश्चर्य की बात है।"

इस पर एक छोटे से गोपाल ने कहा—"अजी, पंचो इसने एक पर्वत के डील डौलवाले बगुला की चोंच को उसी प्रकार फाड़ दिया, जिस प्रकार बच्चे मटर की फली को फार देते हैं। ऐसे ही बछड़े का रूप बनाकर वत्सासुर आया था, उसे पूँछ पकड़कर घुमाकर कैथे के पेड़ों में दे मारा। बलरामजी ने भी धेनुकासुर के पैरों को पकड़कर यम सदन पठा दिया। अकेले उसे ही नहीं, उसके भी कुटुम्ब परिवार वालों को स्वाहा कर दिया। देखो, उस दिन दावानल से हमें कैसा बचाया।"

यह सुनकर एक युवक-सा गोप बोला—"यह सब तो सत्य ही है, किन्तु हमें तो आश्चर्य उस कालिय नाग के फणों पर नृत्य करने पर होता है। बताइये जब कालिय-ह्रदके समीप जो भी जाता वहीं मर जाता। रमणक द्वीप में आये हुए कालिय ने इस वृन्दावन की भूमि पर अपना उपनिवेश बना लिया, यमुनाजी के जल को ही दूषित नहीं किया। उसने वायुमंडल को भी विषैला बना दिया था। उस इतने बड़े प्रबल पराक्रमी शत्रु को

इस बालक ने हँसते हँसते, अपने वश में कर लिया। उसके सैकड़ों फणों पर नटवर ने नृत्य दिखाया। उसे बल-पूर्वक कालियदह से निकालकर कालिन्दी को विषहीन बना दिया। ये सब क्या बातें हैं? कैसे इस बालक में ऐसी ऐसी अलौकिक बातें आ गयीं?"

इस पर एक बूढ़े गोप बोले—"व्रजराज नन्दजी से ही इन सब बातों का कारण पूछना चाहिये। हमारे गोप वंश में आज तक एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसने एक भी ऐसा अलौकिक कार्य किया हो। यह तो हमारी जाति के लिये बड़ी विचित्र बातें हैं।"

तब एक बूढ़े से पंच ने पूछा—"नन्दजी! आप सत्य बतावें अब घुमा फिराकर क्या पूछें हमें यह संदेह हो रहा है, कि यह आपका सगा लड़का नहीं। आपने इसका दष्ठौन भी नहीं किया। नामकरण उत्सव में जातीय वालों को भोज भी नहीं दिया। इस बच्चे को आप कहाँ से ले आये हैं। यद्यपि हमें इसके जन्म कर्मों के विषय में शंका हो रही है, फिर भी हम इससे घृणा करते हों सो भी बात नहीं। व्रज के नर नारी इसे अपने सगे पुत्र से भी अधिक प्यार करते हैं। इसके प्रति सबका सहज स्वाभाविक अनुराग है। हम सब व्रजवासियों की इच्छा यही बनी रहती है, कि सदा इसके मुखारविन्द को देखते ही रहें। फिर भी हमें इसके विषय में संदेह है। यह हमारी जाति का बालक नहीं हो सकता। आप इतने दिनों तक इस रहस्य को छिपाये रहे, आज सत्य सत्य बता दीजिये। नहीं आज से हमारी आपकी रोटी बेटी अलग हो जायगी। हम अपना राजा और बना लेंगे। आपको पंचायत की जाजिम पर न बैठने देंगे। आप हमारी शंका का समाधान कीजिये। अपने बच्चे की उत्पत्ति की कथा सुनाइये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब पंचायत में श्रीनन्दजी के ऊपर यह अभियोग लगाया गया, कि यह बच्चा तुम्हारा नहीं हो सकता, तब तो नन्दजी डर-से गये। उन्होंने अपने मुख पर आये हुए स्वेद को वस्त्र से पोंछा और खाँस मठारकर कंठ को साफ करके पंचों को उत्तर देने के निमित्त प्रस्तुत हुए।"

छप्पय

दश दिनके नहिँ भये पूतना मारि पछारी।
तृणावर्त अरु शकट, काक, बक हने मुरारी॥
खल अघ, धेनुक, वत्स विविध वेपनितैं आये।
आइ असुरता करी श्याम यम सदन पठाये॥
दामोदर बनि यमज तरु, खैंचि गिराये, बालने।
सात दिवस अब खेलमहँ, धरयो शैल कर लालने॥

नंदजीके वचनोंसे गोपोंका समाधान

(६५४)

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ।
एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥*

(श्री भा० १० स्क० २६ अ० १५ श्लो०)

छप्पय

पूछें मिलि सब गोप नन्दतें को ये गिरिधर।
कहो सत्य ब्रजराज कौनके सुत ये नटवर॥
सुनि बोले ब्रजराज सत्य मैं बात बताऊँ।
मेरो ई सुत कृष्ण रहस परि तुम्हें सुनाऊँ॥
गर्ग प्रथम मोतें कही, अवतारी तेरो तनय।
गुन सब नारायण सरिस, ही श्री, बल, तप, नय बिनय॥

किसी शंकासंभव बात को देखकर शंकित होना स्वाभाविक ही है। जीव सर्वज्ञ तो हैं नहीं, वे अनुमान के बल पर ही बहुत-सी बातों को स्थिर करते हैं, जीवों की विषय भोगों की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एकान्त में कोई भाई अपनी सगी युवती

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! गोपों की शंका पर नन्दजी ने उनसे कहा—हे गोपो! तुम्हें जो इस बालक के विषय में शंका हुई

वहिन से हँसकर बातें कर रहा हो, तो देखने वालों की सर्वप्रथम दृष्टि अवैध सम्बन्ध की ही ओर जायगी। उनमें जो नीच प्रकृति के खल होंगे वे तो उसी समय निश्चय कर लेंगे कि यह व्यक्ति सदाचारहीन है, उसी समय वे निन्दा करने लगेंगे। खल पुरुष तो तनिक-सा छिद्र पाते ही झूठा अनुमान लगा कर सर्वत्र बुराई करनी आरम्भ कर देते हैं, किन्तु जो गम्भीर पुरुष हैं, धर्म से भगवान् से डरते हैं, वे तो दूसरों के विषय में शंका होने पर कोई बात निश्चय नहीं करते, किसी के सामने उसे प्रकट भी नहीं करते। जिसके सम्बन्ध में शंका उत्पन्न हुई है, यदि वह ऐसा ही सामान्य पुरुष है, जिससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं तब तो वे उस शंका को पी जाते हैं। सोच लेते हैं, कुछ भी हो, हमें इससे क्या प्रयोजन और यदि शंका अपने किसी घनिष्ट सम्बन्धी आत्मीय पुरुष के सम्बन्ध में हुई है, तो अवसर पाकर प्रेम-पूर्वक उसी पर उसे प्रकट करते हैं। शंका को प्रकट इसलिये करते हैं, कि शंका बनी रहने पर पूर्ण प्रेम होता नहीं। यह अत्यन्त आत्मीयता का चिह्न है। जब उसके द्वारा शंका का समाधान हो गया, तो फिर सज्जन पुरुषों को पश्चात्ताप होता है, हाय! इतने पवित्र विशुद्ध बन्धु पर हमने ऐसी व्यर्थ की शंका क्यों की? किन्तु शंका का समाधान होना अच्छा ही है। जब तक चित्त में तनिक भी शंका बनी रहती है, तब तक हार्दिक प्रेम होता नहीं। स्वार्थी लोगों की दूसरी बात है। स्वार्थी तो किसी से प्रेम कर ही नहीं सकते।

है, इस विषय में मेरा कथन श्रवण करो। इसे सुनकर तुम्हारी शंका दूर हो सकती है। गर्गजी ने इस बच्चे के विषय में जो बातें बताई थीं, उन्हें आप सबको सुनाता हूँ।"

उन्हें तो अपने स्वार्थ से प्रयोजन ? जब तक जिससे अपना स्वार्थ निकलता है, वह अच्छा हो बुरा हो अपना स्वार्थ सिद्ध करना स्वार्थ न निकला तुम अपने घर हम अपने घर शंका वास्तव में प्रेम में ही होती है, समाधान होने पर प्रेम और बढ़ता ही है।'

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब गोपों ने नन्दजी के मुख पर ही भरी पंचायत में यह शंका प्रकट की, कि श्रीकृष्ण हमें आपके पुत्र प्रतीत नहीं होते, तब नन्दजी ने कहा—"पञ्चो ! आप मेरी बात पर विश्वास करें, श्रीकृष्ण मेरा ही पुत्र है।" इस पर एक अधेड़ से वाचाल गोपने कहा—व्रजराज ! देखिये, अब आप बुरा न मानें। पहिले तो शंका होना ही बुरी बात है। यदि शंका मन में हो भी जाय, तो उसे छिपाना यह महापाप है। हमें जिन जिन कारणों से शंका हुई है, उन्हें बतावें तो आप बुरा तो न मानेंगे ?" नन्द जी ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"बुरा मानने की कौन-सी बात है। मोरी का पानी और पेट के भीतर की बात का तो निकल जाना ही अच्छा है। भीतर ये वस्तुएँ रहेंगी तो सड़ेंगी। आप अपनी शङ्काओं को स्पष्ट कहें।" उसी गोप ने कहा—"देखिये हमें इन बातों से शंका हुई है। प्रायः पुत्र माता के या पिता के अनुरूप ही होता है। लड़के प्रायः पिता के अनुरूप होते हैं लड़कियाँ प्रायः माता के अनुरूप होती हैं। कभी इसके विपरीत भी हो जाता है। श्रीकृष्ण का मुख न आपसे मिलता है, न नन्दरानी के मुख से मिलता है। आप का मुख कुछ लम्बा और भारी है, श्री कृष्ण का मुख चन्द्रमा के सदृश गोल गोल है। वर्ण भी नहीं मिलता। आप भी गोरे हैं, नन्दरानी जी भी गोरी हैं। फिर आप का यह पुत्र काला कैसे हुआ। काला भी सामान्य नहीं है। ऐसे काले रंग का व्यक्ति तो संसार में

हमने देखा ही नहीं। जहाँ अत्यन्त हरापन होता है वह काला नीला एक विचित्र-सा रंग हो जाता है। जल भरे मेघों के समान, मयूर, के कंठ के समान, नीले कमल के समान अलसी के पुष्प के समान, वर्षा कालीन सघन दूर्वादल के समान तथा इन्द्रनील मणि के समान इस बालक का विचित्र रंग हैं। ऋषि मुनि आते हैं, इसे वासुदेव कह कर पुकारते हैं। वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। इसमें भी सन्देह होता फिर स्वभाव भी आपका इसका नहीं मिलता। आप भोले भाले यह महाचंचल। आकृति भी नहीं मिलती। आप सरल सीधे हैं। यह तीन स्थान से टेढ़ा है, दृष्टि भी नहीं मिलती। आपकी चितवन सीधी है, यह जब देखता है टेढ़ी दृष्टि से देखता है। कर्म भी नहीं मिलते। आपको तो हमने कभी ढाई मन के नाल को उठाते नहीं देखा, किन्तु यह तो सात दिनों तक सात कोश लम्बे पर्वत को एक उँगली पर उठाये रहा। पहिले हमारे व्रज में कभी भेड़िया भी आ जाता था, तो आप सब गोपों की सहायता से उसे घिरवाकर मरवाते थे, किन्तु इसने इतने बड़े बड़े राक्षसों को बात की बात में ही पछाड़ दिया। इन सभी बातों को देखकर हमारे मन में शङ्का हो गयी है, कि यह आपका पुत्र नहीं है। या तो आप इसे कहीं से ले आये हैं, या कुछ गड़बड़ सड़बड़ है। कुछ दाल में काला है।"

यह सुनकर सब लोग हँसने लगे। नन्दजी गम्भीर हो रहे थे। वे हँसे नहीं, उन्होंने सम्हलकर कहना आरम्भ किया—"पंचो! आपने जो शङ्का मेरे सम्मुख प्रकट की यह मेरे ऊपर बड़ी कृपा की हितैषियों का यही काम होता है, कि जिसके सम्बन्ध में शंका हो, उसीसे कहे। आपको शंका होना स्वाभाविक है। जो कारण आपने बताये हैं, उनसे ऐसी शंका सभी को हो सकती

है, यह दूसरी बात है कोई स्वार्थवश प्रकट न करे, किन्तु आपने स्नेहवश ये बातें कह ही दीं, अब इस विषय में मेरा जो वक्तव्य है उसे सुनिये। जब यह बच्चा पैदा हुआ था तो इसके जन्म के कुछ ही दिनों पश्चात् ज्योतिष शास्त्र के आचार्य, यदुवंश के राज पुरोहित गर्ग घूमते फिरते मेरे यहाँ आ गये। मैंने उनसे राम श्याम का नाम संस्कार करने को कहा।" इस पर एक वृद्ध गोप ने पूछा—"आपने गर्ग मुनि से नामकरण संस्कार करने के लिये क्यों कहा? हमारे कुल पुरोहित तो शाण्डिल्य मुनि हैं?"

धैर्य के साथ नन्द जी ने कहा—"उस समय शाण्डिल्य-मुनि व्रज में थे नहीं कहीं बाहर गये थे। सहसा महामुनि गर्ग आ गये। ब्राह्मण तो जन्म से ही सबके गुरु होते हैं, मैंने सोचा—"इतने भारी विद्वान् त्रिकालदर्शी ज्योतिषाचार्य महामुनि गर्ग स्वतः ही—बिना बुलाये—आ गये हैं, तो इन्हीं के द्वारा नाम करण संस्कार क्यों न करालूँ। ये त्रिकालज्ञ हैं। ये जन्मपत्री बनाकर मुझे बालक का सब सत्य सत्य भविष्य भी बता देंगे। इसलिए मैंने उनसे प्रार्थना की।" उन्होंने कहा—"यदि आप धूम धाम न करें बड़ा भारी उत्सव न करें, तब मैं तुम्हारे बच्चों का नामकरण कर सकता हूँ।" मैंने सोचा—"धूम धाम महोत्सव तो जब चाहें तब कर सकते हैं। यह तो घर की बात है। इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए।" यही सोचकर मैंने बिना जाति भोज किये उन महामुनि से नामकरण संस्कार करा लिये। पीछे मैंने तीसरे महीने जन्म-नक्षत्र के दिन उत्सव भी किया था। जातीय भोज भी दिया था, यदि आप उसे न मानें, तो मैं आज फिरसे जातीय भोज देने को तत्पर हूँ।" इस पर एक वृद्ध से गोप बोले—"हाँ,

जी ! इसमें कोई बुराई की बात नहीं, महामुनि गर्ग को नामकरण कराना उचित ही था । हाँ, आगे कहिये उन्होंने क्या कहा ?"

नन्दजी बोले—"हाँ, तो गर्गजी ने दोनों बच्चों का संस्कार किया। फिर वहाँ बैठे बैठे ही उन्होंने दोनों की जन्म पत्री बनायी । जन्म पत्री बनाकर उन्होंने इस कृष्ण को उद्देश्य करके ये बातें मुझसे कहीं । वे कहने लगे—'नन्द ! यह तुम्हारा बालक साधारण बालक नहीं है। प्रत्येक युग में यह प्रकट होता है । सत्ययुग में यह श्वेतवर्ण का होता है, त्रेतायुग में रक्तवर्ण का, द्वापर में पीतवर्ण का और द्वापर के अंत में कलियुग के आदि में यही कृष्ण वर्ण का हो जाता है। यह तुम्हारा पुत्र जीव नहीं ईश्वर है । यह अवतार धारण करता है। प्रत्येक युग में इसके अवतार होते हैं, पहिले कभी यह वसुदेव का भी पुत्र रहा था, इसलिए ऋषि महर्षि ज्ञानीमुनि इसे वासुदेव भी कहेंगे । इससे तुम बुरा मत मानना । तुम्हारे इस पुत्र के अनन्त गुण हैं, अनन्त कर्म हैं । उन गुण कर्मों के अनुसार इसके नाम भी अनन्त हैं, अतः इसे कोई पूतनारि बकासुर संहारि, वनमाली, गिरवरधारी, कुञ्जविहारी, लीलाधारी तथा और भी अनेकों नामों से पुकारे तो तुम कुछ और मत समझना इस रहस्य को कुछ कुछ त्रिकालज्ञ होने से मैं ही जानता हूँ, अन्य साधारण लोग तो समझ ही नहीं सकते । मैं भी पूर्णरीत्या नहीं समझ सकता । तुम्हारा यह बच्चा बड़े यशस्वी नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है, इसलिए संसार में इसका बड़ा भारी यश होगा । यह समस्त गौओं को और गोकुल के गोप गोपियों को सुख देने-वाला होगा । इसके द्वारा तुम सब ब्रजवासी बड़ी बड़ी विपत्तियों से बात की बात में तर जाओगे ।" इस पर एक गोपने कहा—"गर्गजी की भविष्यवाणी तो सोलहू आने सत्य उतरी है इसके बालकपन से अब तक , जितनी विपत्तियाँ

व्रज पर आयी हैं, यदि उनसे यह रक्षा न करता तो व्रज का तो नाम भी शेष न रहता। हम सब कबके स्वाहा हो जाते।"

नन्दजी ने कहा—"गर्गजी ने मुझे ये सभी बातें पहिले ही बता दी थीं, उन्होंने यह भी कहा था कि, अबके ही यह दुष्टों का संहार करे सो बात भी नहीं पूर्वयुगों में भी अराजकता के समय दुष्ट दस्युओं ने प्रजा को पीड़ित किया था। तब वे सब इसकी शरण गये। साधुओं को दुखी देखकर इसने उनका पक्ष लिया। इसके द्वारा सबल और सुरक्षित होकर सज्जन पुरुषों ने दुर्जनों का दमन किया। तुम्हारा यह पुत्र सामान्य नहीं है। इसकी महिमा का तो वर्णन कोई कर ही नहीं सकता। जो इससे प्रेम करेंगे वे भी जगत् पूज्य बन जायँगे। सौभाग्यशाली पुरुष ही इससे प्रेम कर सकते हैं। उन्हें कोई दबा नहीं सकता धमका नहीं सकता।" आगे उन्होंने अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा था—"नन्द! तुम्हारा यह पुत्र अलौकिक है। गुण, श्री, कीर्ति और प्रभाव की दृष्टि से यह साक्षात् श्रीमन्नारायण के सदृश है। यह जो भी सम्भव असम्भव कर्म करे, उस पर आप लोग आश्चर्य प्रकट न करें। यह सब कुछ करने में समर्थ है, इसके लिये संसार में कुछ भी असम्भव नहीं।" सो, पंचो! यह बात मुझे गर्गजी ने पहिले ही बतायी थी। बतायी ही नहीं थी।" ये सब बातें इसकी जन्मपत्री में लिखकर मुझे वे दे भी गये थे। वे तो यह कहकर अपने घर मथुरा में चले गये और मैं व्रज में ही रह कर उनकी बातों को सोचता रहा, तभी से मैं इन अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णचन्द्र को श्रीमन्नारायण का अंश ही मानता

हूँ। आपको विश्वास न हो, तो यह मेरे पास जन्मपत्री है इसे देख लें। इस पर भी विश्वास न हो आप सोचते हों यह वैसे ही झूठ बोलता है, तो आप सब चल कर गर्गजी से पूछ लें, कि यह बात सत्य है या नहीं। यदि इसमें एक भी बात मैंने बनावटी कही हो, तो जो कारे चोर को दंड हो, वह मुझे देना।" यह सुनकर समस्त गोप बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नन्दजी को उठकर गले से लगाया। और सब एक स्वर से कहने लगे—"व्रजराज! हमारी शंका का समाधान पूर्णरीत्या हो गया। आप सत्यवादी हैं। हमारी शंका के कारण हमसे अप्रसन्न न हों, हमारे ऊपर पहिले के ही समान कृपा बनाये रखें। हमारा सब विस्मय दूर हो गया। श्रीकृष्णचन्द्र धन्य हैं, जो सदा हमारी बड़ी विपत्तियों से रक्षा करते रहते हैं। आप भी संसार में धन्य हैं, जो आपने ऐसा पुत्ररत्न पाया, हम सब भी धन्य हैं, जो ऐसे अवतारी महापुरुष के साथ रहने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार जब गोपों की शंका का समाधान हो गया, तब समस्त व्रजवासी परम प्रमुदित हुए। वे भगवान् की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। भगवान् भी सुख-पूर्वक उसमें रहकर नाना भाँति की अनेकों और भी अद्भुत अद्भुत क्रीड़ायें करते हुए व्रजवासियों को सुख देने लगे। अब इन्द्र ने आकर जिस प्रकार भगवानका अभिषेक किया उस कथा प्रसङ्गको मैं आगे सुनाऊँगा, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

करि मोकू आदेश गये घर गर्ग महामुनि।
हौं अति विस्मित भयो पुत्रके ग्रहफल शुभ सुनि॥
तबतैं जो जिह करे मोइ होवे नहिँ विस्मय।
नारायन सुत समुझि सतत विहरौं हौं निर्भय॥
समाधान सबको भयो, करें प्रशंसा नन्दकी।
जय बोलें मिलिकें सकल, नन्दनँदन ब्रजचन्दकी॥

इन्द्र की नन्दनन्दन से क्षमा याचना

(६५५)

गोवर्धने घृते शैल आसाराद् रक्षिते व्रजे ।
गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥*
(श्री भा० १० स्क० २७ अ० १ श्लो०)

छप्पय

व्रज की रक्षा करी कृष्णने यश जग छायो ।
लज्जित ह्वैकें इन्द्र स्वर्गतें प्रभुढिँग आयो ॥
कामधेनु गोलोक त्यागि सेवामहँ आई ।
आय शक्र अति सकुचि मधुर स्वर विनय सुनाई ॥
कर जोरें शतक्रतु कहै, शुद्ध सत्वमय नाथ तुम ।
प्रभो ! छिमहु अपराध अब, माया मोहित जीव हम ॥

सुरा के मद में जब आदमी मत्त हो जाता है, तो फिर उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता । कौन-सी बात करनी चाहिये कौन-सी न करनी चाहिये इसका विवेक नहीं रहता । इस गुड, जौ, महुए, अंगूर तथा अन्य वस्तुओं की बनाई मदिरा का मद तो एक दो दिन में उतर जाता है किन्तु

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब गोवर्धन पर्वत को धारण करके भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रज की मूसलाधार वृष्टि से रक्षा की । तब उनके समीप गोलोक से सुरभि गौ और अपने लोक से इन्द्र आये ।"

काम का मद, मोह का मद तथा ऐश्वर्यादि का मद बहुत दिनों में जब भगवान् ही कृपा करें तब उतरता है। धन के कारण यदि अत्यधिक मद हो जाय, तो उसकी एक मात्र औषधि है दरिद्रता इसी प्रकार ऐश्वर्य का मद हो जाय, तो वह ऐश्वर्य नाश से ही शान्त होता है। हम लोगों का धन नष्ट हो जाता है, ऐश्वर्य कम हो जाता है, तो हम समझते हैं, हम पर बड़ी विपत्ति आ गयी, वास्तव में यह विपत्ति नहीं भगवान् की बड़ी कृपा है। धन रहता तो न जाने और कितने अनर्थ बनते, दुष्ट लोगों का साथ होता। धन नष्ट करके भगवान् ने हमारे हृदय में दीनताका संचार किया। हमें यह सोचने का अवसर दिया, कि धनहीन कैसे जीवन बिताते हैं। मद चूर होने पर जो ऐश्वर्य मिलता है, उसका प्रभु-प्रसाद समझकर उपभोग करे तो उसमें कभी मोह नहीं होता। हमारा शरीर है, यदि हम पथ्य पूर्वक उतना ही आवश्यक भोजन करे तब तो नीरोग बना रहेगा। जहाँ हमने जिह्वा-लोलुपतावश अनाप सनाप खाना आरम्भ कर दिया, तहाँ पेट बढ़ जायगा। शरीर स्थूल हो जायगा। मेद अधिक हो जायगा। रोग आ आकर शरीर में निवास करने लगेंगे। बाह्य दृष्टि वाले तो समझते हैं, ये बड़े आदमी हैं, मोटे हैं नीरोग और स्वस्थ हैं, किन्तु वास्तव में वे रोगी हैं। उन्हें यदि ज्वर आ जाय, तो वह विकारों को पचावेगा। वह ज्वर दुख के लिये नहीं है सुख के ही लिये है। उससे बढ़े हुए विकार पचेंगे। बढ़ी हुए धातुओं का शमन होगा। जब ज्वर पच जाय और फिर शनैः शनैः पथ्य भोजन करे, कभी कुपथ्य न करे तो शरीर स्वस्थ रहेगा अतः भगवान् जिसे भी धन सम्पत्ति से भ्रष्ट करते हैं, उसके ऊपर कृपा ही करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन्द्र को बड़ा अभिमान था, कि मैं तीनों लोकों का एक मात्र अधीश्वर हूँ। इसी अभिमान में

भरकर उसने भगवान् के लिये भी न कहने योग्य बातें कहीं। अपने यज्ञ के न करने से गोपों पर क्रोध भी किया और सम्पूर्ण व्रज को डुबा देने का भी प्रयत्न किया। जब वह अपने प्रयत्न में विफल हो गया, तब तो वह मेघों को लौटाकर अत्यन्त लज्जित होकर अपने लोक को चला गया। भगवान् जब लौटकर व्रज में आ गये तब इन्द्र ने सोचा—"चलकर भगवान् से अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करें, किन्तु सबके सम्मुख कैसे जायँ, गोप क्या सोचेंगे, यह देवताओं का राजा कैसा दीन हो रहा है। यही सब सोचकर वह इस घात में लगा रहा, कि भगवान् को कभी एकान्त में पावें, तो उनसे क्षमा प्रार्थना करें।"

संयोग की बात एक दिन भगवान् वन में एकाकी विचर रहे थे। कहीं साकेत स्थान की ओर अकेले जा रहे होंगे, कि इतने में ही इन्द्र ऐरावत की पीठ पर से उतरकर अपने सूर्य के स्पर्श करते हुए, उनके सम्मुख दंडवत् पड़ गया। भगवान् ने देखा, यह कौन मेरे पैरों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहा है। मैं अपने गन्तव्य स्थान को जा रहा था। ये अर्थार्थी कंगले आकर बीच में मेरे मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं। वे वेष भूषा देख कर ही समझ गये, यह देवताओं का राजा इन्द्र है। वह बड़ी देर से पैरों पर पड़ा है। यद्यपि देवता गण पृथिवी का स्पर्श नहीं करते अधर में ही रहते हैं, किन्तु आज इन्द्र इस नियम को भूल गया भगवान् ने कहा—"उठो भाई, उठो कौन हो? क्या चाहते हो?"

भगवान् के बार बार कहने पर भगवद् अवज्ञा करने से मन ही मन अत्यन्त लज्जित हुआ इन्द्र नीचा सिर किये हुए उदास मन से भगवान् के सम्मुख खड़ा हो गया। उसका त्रिलोकाधिपति होने का मद उतर गया था। अब वह मद रहित होकर अश्रु बहाता हुआ भगवान् की स्तुति करने लगा—"आप शुद्ध सत्वमय हैं, गुणातीत हैं, अज्ञान से यह जगत् आपकी

सत्ता से सत् सा भासता है, आपका जगत् से कोई सम्बन्ध न रहने पर भी आप धर्म की स्थापना के निमित्त युग युग में अवतार धारण करते हैं। आप सबके सर्वस्व हैं, मुझ जैसे मानियों के मान का मर्दन करके उन पर कृपा करते हैं, आप शिष्टों का पालन और दुष्टों का शासन करते हैं। आपका अवतार केवल भक्तों की प्रीति के ही निमित्त होता है, आप कृष्ण हैं, जगदीश्वर हैं, हरि हैं। आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।"

भगवान् ने कहा—"बात बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं। अपना प्रयोजन कहो! तुम चाहते क्या हो?"

देवेन्द्र ने कहा—"भगवन्! मैं आपका ही बनाया हुआ इन्द्र हूँ। मुझे अपने ऐश्वर्य का बड़ा अभिमान हो गया था, यज्ञों में निरन्तर भाग खाते खाते मैं यह मान बैठा था, कि सभी यज्ञों का अधीश्वर एकमात्र मैं ही हूँ। सबको मेरा ही यज्ञ करना चाहिए। जब गोपों ने आपकी आज्ञा से मेरा मख नहीं किया, इसमें मैंने अपना बड़ा अपमान समझा। गोपों से इस अपमान का बदला लेने के निमित्त मैंने अत्यन्त क्रोध-पूर्वक वर्षा और वायु से व्रज को नष्ट करने की चेष्टा की, किन्तु कृपालो! आपने मुझ पर और व्रज-वासियों पर बड़ी कृपा की।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"व्रज-वासियों पर कृपा तो कही भी जा सकती है, कि उनकी वर्षा से रक्षा की किन्तु तुम पर क्या कृपा की। तुम्हारा तो मैंने उलटा यज्ञ ही भंग कर दिया।"

इस पर इन्द्र ने कहा—"भगवान! कृपा तो मेरे ही ऊपर सबसे अधिक हुई। यदि आप मेरे अभिमान को चूर्ण न करते तो मैं और भी बड़े बड़े अनर्थ करता।"

यह सुनकर भगवान् ने कहा—"हाँ, भैया! यथार्थ बात,

यही है। तुम अपने ऐश्वर्य के मद से अत्यन्त ही मतवाले हो रहे थे। मैंने सोचा—"वैसे तुमसे कहूँगा, तो तुम मानोगे नहीं। क्योंकि जिसे अपने धन का, ऐश्वर्य का, प्रभाव का, तपस्या तथा सिद्धियों का अभिमान हो जाता है, वह दूसरों की बात सुनता ही नहीं जो ऐश्वर्य और लक्ष्मी के मद से अन्धा हो रहा है, वह पुरुष मुझ दण्डपाणि प्रभु को देखता ही नहीं। इसीलिये मैं जिस पर कृपा करना चाहता हूँ उसको ऐश्वर्य भ्रष्ट कर देता हूँ, जिससे वह मेरा निश्चिन्त होकर भजन कर सके।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् की यह क्या कृपा, कि भक्तों का धन, ऐश्वर्य तथा स्वजनों से पृथक् करके उसे कष्ट पहुँचाते हैं।"

यह सुनकर सूतजी गंभीर हो गये। वे बोले—"भगवन् संसारी वस्तुएँ तो नाशवान है, क्षणिक हैं। इसके आने न आने में क्या कष्ट ? विपत्ति तो उसी का नाम है, जब भगवान् भूल जायँ और सम्पत्ति वही है, जब भगवान् याद आवें। भगवान् को भूलकर संसारी विषयों में आसक्त होना यह सुख नहीं महान् दुख है। भक्त को जिसमें अधिक आसक्ति होती है भगवान् उसी से उसका विछोह करा देते हैं। पुराणों में इस विषय के अनेकों दृष्टान्त हैं। नलकूवर मणिग्रीव को अपने ऐश्वर्य में अभिमान हो गया था, नारदजी द्वारा उनको ऐश्वर्य से भ्रष्ट करके उन्हें भगवान ने वृक्ष योनि में डाल दिया। अंत में उन पर कृपा की अपनी भक्ति प्रदान की। महाराज चित्रकेतु को अपने इकलौते पुत्र में अत्यन्त आसक्ति हो गयी थी, उनकी विमाताओं से विष दिलाकर उसकी मृत्यु करा दी अंत में उसे संकर्षण भगवान की प्राप्ति हुई। नित्य ही हम संसार में देखते हैं, जिनके हृदय में भक्ति का कुछ अंकुर होता है, उनका प्यारे से प्यारा सर्वगुण

सम्पन्न पुत्र मर जाता है। उस समय तो उन्हें अत्यन्त दुख होता है, निरन्तर रोते ही रहते हैं, किन्तु उसी के विषाद में उनके अन्तःकरण से सब मल धुल जाते हैं, वे पहिले से भी अधिक भक्त बन जाते हैं, नित्य ही हम ऐसी घटनाओं को देखते हैं।

जिस समय भगवान् बुद्ध इस पृथिवी पर विचरण करते थे उन दिनों में सर्वत्र वैराग्य में ही सुख है, इसी का उपदेश करते। सहस्रों पुरुष उनके चरणों में आकर शान्ति लाभ करते थे उनकी बड़ी ख्याति थी। सभी उन्हें शान्ति का दूत मानते थे।

उन्हीं दिनों एक अत्यन्त धनिक महिला एक बड़े नगर में रहती थी। उस पर अटूट धन सम्पत्ति थी। उसका एक अत्यन्त ही सुन्दर लड़का था, उसे वह प्राणों से अधिक प्यार करती, उसके लिये वह सब कुछ करने को तैयार रहती। लड़का भी बड़ा सुन्दर, सुशील होनहार और मातृभक्त था। सहसा उसे एक बार ज्वर आया। माताने प्राणोंका पण लगाकर उसकी चिकित्सा करायी। उसने घोषणा कर दी, जो मेरे बच्चे को बचा देगा, उसे मैं अपना सर्वस्व दे दूँगी।" किन्तु मृत्यु के मुख से बचाने की सामर्थ्य किसमें है। बच्चा बच न सका वह मर गया। माता के दुख का पारावार नहीं था। उसने बच्चे के मृतक शरीर को छाती से चिपटाया रोती ही रही। पल भर को भी उसे अपने से पृथक् न किया। इस प्रकार उसे दो दिन हो गये।

उसी समय उसने सुना भगवान् बुद्ध मेरे नगर में पधारे हैं। वे मृतक को जिला सकते हैं। अपने बच्चे के शव को छाती से चिपटाये ही चिपटाये वह उनके समीप गयी और बोली— "आप मेरे बच्चे को जिला देंगे, तथागत ?"

भगवान् बुद्ध उसके ऐसे मोह को देखकर समझ गये यह कोई संस्कारी है। जो अनित्य वस्तु में इतनी आसक्ति रख सकती

है, यदि इसकी यही आसक्ति वैराग्य में हो जाय तो संसार सागर से इसका बेड़ापार हो जाय। यही सोचकर वे बोले—"हाँ, मैं इसे जिला सकता हूँ, किन्तु तुम्हें एक वस्तु लानी होगी।"

अत्यन्त ही उत्सुकता के साथ उसने कहा—"आप आज्ञा करें चाहे जितना भी द्रव्य व्यय करना पड़े, मैं आपकी बतायी वस्तु को अवश्य लाऊँगी।"

भगवान् बोले—"नहीं, मुझे मूल्यवान् वस्तु की आवश्यकता नहीं। मुझे केवल एक मुट्ठी सरसों चाहिये। किन्तु वह सरसों गृहस्थी के घर से लानी होगी, जिसके घर में कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।"

वह तो पुत्र के प्रेम में पगली हो रही थी, उसे कुछ ध्यान तो था ही नहीं तुरन्त उठी और चल दी। प्रत्येक घर में जाती और कहती मुझे एक मुट्ठी सरसों दे दो।" इतनी धनमती महिला को एक मुट्ठी सरसों माँगते देखकर सभी आश्चर्य चकित हो जाते। उसके लिये सरसों लेकर आते। वह पूछती—"तुम्हारे घर में किसी की मृत्यु तो नहीं हुई है ?" तब वे कहते—"हमारे यहाँ तो मृत्यु हुई है।" इतना सुनकर वह वहाँ से चल देती, दूसरे के घर जाती। वहाँ भी ऐसा उत्तर पाकर तीसरे के घर जाती। इस प्रकार वह दिन भर भटकती रही। चलते समय वह थक गयी। कोई घर उसे ऐसा न मिला जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। कोई ऐसा व्यक्ति न मिला जिसका कोई सम्बन्धी न मरा हो। वह लौटकर भगवान् बुद्ध के निकट आयी।

भगवान ने पूछा—"तुम सरसों लायी ?"

उसने दीनता के स्वर में कहा—"प्रभो ! कहीं मिली ही नहीं।"

बनावटी विस्मय के स्वर में भगवान् बोले—"तुम्हें एक मुट्ठी कहीं सरसों नहीं मिली ?"

उसने कहा—"मिली क्यों नहीं ! सरसों तो बहुत मिली, किन्तु कोई घर ऐसा नहीं मिला, जिसमें मृत्यु न हुई हो, कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसका कोई सम्बन्धी न मरा हो।"

इस पर हँसकर भगवान् ने कहा—"जब सभी घरों में मृत्यु होना अनिवार्य है, तो तुम्हारे घर में मृत्यु हो गयी, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? जब सभी के सम्बन्धी सदा कैसे जीवित रह सकते हैं। जो जन्मा है, वह मरेगा। उत्पन्न होने वाले की मृत्यु अवश्यम्भावी है।" इतना सुनते ही उसे ज्ञान हो गया। अपना सर्वस्व त्याग कर वह भिक्षुणी बन गई। भगवान् की उसके ऊपर कृपा हो गयी।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश अपयश ये सभी दैव की देन हैं। भगवान् धन हानि सगे सम्बन्धी प्रिय बन्धु की मृत्यु तथा अपयश देकर भी कृपा करते हैं। इन्द्र का जो ऐश्वर्य नष्ट किया, वह उसके ऊपर अनुग्रह ही की। जब इन्द्र इस रहस्य को समझ गया, तो भगवान् की शरण में आया और उनसे अपने अपराध के लिये क्षमा याचना की। भगवान् तो भक्तवत्सल हैं शरणागत प्रतिपालक हैं। इन्द्र को दीन देखकर उन्होंने आज्ञा की—"कोई बात नहीं, देवेन्द्र ! अब तुम अपने लोक में जाओ। आनन्दपूर्वक स्वर्ग का शासन करो। मेरी आज्ञा का पालन करते हुए अभिमान रहित होकर अपने अधिकार पर स्थित रहो।" भगवान् की ऐसी आज्ञा पाकर इन्द्र अपने लोक को चला आया। अब कामधेनु ने आकर भगवान् को जैसे गोविन्द की उपाधि दी उसका वर्णन आगे करूँगा।

छप्पय

जनक अंकमहँ करहि तनय नित अगनित अविनय।
पितु ताड़न हू करहिं तदपि हिय रहहि प्रेममय॥
मेरे गुरु पितु मातु बन्धु तुम सब कछु स्वामी।
समुझि शक मद रहित कहैं हरि अन्तरयामी॥
इन्द्र! जाहु निज लोककूँ, मम-आयसु पालन करो।
कबहुँ न करियो गर्व अब, मम सिख यह हियमहँ धरो॥

गौओं के इन्द्र श्रीगोविन्द

(६५६)

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः।
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन्॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा।
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम्॥*
(श्री भा० १० स्क० २६ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

तब पुनि बोली सुरभि श्याम तुम लीलाधारी।
मम सन्ततिकी विपति धारि गिरि हरि तुमटारी॥
अब अनुमति तैं आज आप अभिषेक करावें।
शक्र सुरनि के इन्द्र आप 'गोविन्द' कहावें॥
निज पयतैं प्रभु रुख निरखि, करयो धेनु अभिषेक पुनि।
हरषे हरि अभिषेक लखि, इन्द्र सहित सुर सिद्ध मुनि॥

हम अपनी श्रद्धा जताने के लिये बड़ों के सम्मुख छोटी छोटी वस्तुओं का उपहार रखते हैं। बड़ों को अपनी बुद्धि के अनुसार छोटे नामों से सम्बोधित करते हैं। हमारी दृष्टि में वह बहुत बड़ा आदर है, किन्तु उनके लिये वह कुछ भी नहीं है,

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिन्होंने समस्त यज्ञ भङ्ग होने के कारण कुपित हुए इन्द्र के द्वारा वर्षा करने पर ब्रजवासियों

तो भी वे हमारी प्रसन्नता के निमित्त उस क्षुद्र उपहार को उस अल्प उपाधि को ग्रहण करते हैं। इससे अर्पण करने वालों को सुख होता है। महत् पुरुषों के समस्त कार्य दूसरों के ही निमित्त होते हैं। स्वयं तो वे आप्त काम होते हैं, किन्तु भक्तों के लिये अनुगतों के लिये वे सब कुछ करते हैं। उनके साथ हँसते खेलते हैं, शिष्टाचार की बातें कहते हैं, उनकी की हुई पूजा को ग्रहण करते हैं। यही महत्पुरुषों की महत्ता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! इन्द्र के क्षमा-याचना करने पर समस्त गोजाति की आदि माता सुरभि श्रीकृष्ण के समीप आई। उस महामनास्विनी कामधेनु ने आकर प्रथम गोपवेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण के पादपद्मों में प्रणाम करके तथा उन्हें सुन्दर सम्बोधनों से सम्बोधित करके अपनी संतानों सहित कहना आरम्भ किया। कामधेनु बोली हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आप सम्पूर्ण चराचर जगत के एक मात्र अधीश्वर हैं। हे महायोगिन् ! आप सम्भव असम्भव सब कुछ करने में समर्थ हैं। हे विश्वात्मन् ! आप घट घट की जानने वाले हैं। हे विश्व की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के एक मात्र स्थान ! यह जगत् आपका लीला विलास मात्र ही है। हे अच्युत आप वास्तव में लोकनाथ हैं। आपके द्वारा गोजाति भी सनाथ हो गई। इन्द्र तो क्रोध में भरके मेरी सन्तानों को मारने के लिये उद्यत ही था। आपने ही अपने

को स्त्री और पशुओं के सहित वज्रपात, तथा ओलों की बौछार और प्रचण्ड पवन से पीड़ित होकर शरण में आने पर सम्पूर्ण व्रज की रक्षा की। उस समय जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को लीला पूर्वक हँसते हँसते एक हाथ से उखाड़कर उसी प्रकार उठा लिया जिस प्रकार कोई निर्बल बालक क्रीड़ा में कुकुरमुत्ता को उठा लेता है ऐसे इन्द्र के मद को चूर्ण करने वाले गौओं के इन्द्र श्री नन्दनन्दन हम पर प्रसन्न हों।"

योग प्रभाव से गिरिराज गोवर्धन को छतरी की भाँति उठाकर गौजाति की रक्षा की। हे जगत् पते! आप हमारे परम पूजनीय देव हैं। आप हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करें। हम आपके चरणों में कुछ निवेदन करना चाहती हैं।"

भगवान् ने कहा—"हे कामधेनु! तुम जो कहना चाहती हो, वह निर्भय होकर कहो। संकोच करने का काम नहीं है।"

यह सुनकर सुरभि का साहस बढ़ा उसने विनय के साथ भगवान् से कहा—"प्रभो! आप सदा ही गौ, ब्राह्मण देवता तथा साधु सन्तों की रक्षा के लिये अवतार धारण करते हैं। हम चाहती हैं आप गौओं के इन्द्र बनें। हम आपको "गोविन्द" की उपाधि से विभूषित देखना चाहती हैं।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—"हे सुरभि—"तीनों लोकों के इन्द्र तो ये शतक्रतु देवेन्द्र हैं ही, फिर तुम मुझे गौओं का पृथक् इन्द्र क्यों बनाना चाहती हो। ये ही समस्त ऋषि मुनियों को देवताओं के तथा तीनों लोकों के इन्द्र हैं।"

कामधेनु ने कहा—"प्रभो! इन्द्र तो वही होता है, जो विपत्ति से रक्षा करे। इन्द्र ने तो जान बूझकर और गौओं को विपत्ति में डालने का प्रयत्न किया। रक्षा तो आपने ही की। अतः! हम अपनी श्रद्धा भक्ति व्यक्त करने के लिये निमित्त आपको इन्द्र बनाना चाहती हैं। कृपा करके आप हमारी इस विनय को स्वीकार करलें।"

भगवान् ने कहा—"गौमाता! ब्रह्माण्ड में इन्द्र आदि तो लोक पितामह ब्रह्माजी बनाया करते हैं, उनकी अनुमति के बिना किसी को इन्द्र बनाने का अधिकार ही नहीं। "ऐसा सृष्टि का सनातन नियम है।"

शीघ्रता के साथ कामधेनु ने कहा—"हम लोकपितामह ब्रह्मा जी की आज्ञा से ही तो यह प्रस्ताव कर रही हैं। उन्होंने ही तो

हम इन देवताओं की माता अदिति के सहित आपकी सेवा में भेजा है। भगवान् आपने भूमिका भार उतारने के निमित्त भू-मण्डल पर धारण किया है। अतः हम आज आपका विशेषाभि-षेक करके आपको "गोविन्द" की उपाधि से विभूषित करना चाहती हैं।"

भगवान् ने सरलता के साथ कहा—"अच्छी बात है, जिसमें तुम्हारी प्रसन्नता हो। किन्तु ये इन्द्र तो इसमें अपना अपमान न समझेंगे ?"

इस पर इन्द्रादि समस्त देवताओं की माता भगवती अदिति देवी ने कहा—"भगवान्! आप तो चराचर विश्व के इन्द्र हैं। गौओं का इन्द्र होना यह तो आपके महत्व को घटाना है। इन्द्र तो इसमें अपना सौभाग्य समझेगा। इससे उसका गौरव और बढ़ेगा। यह स्वयं अपने ऐरावत की सूँड द्वारा लाये हुए आकाश गंगा के जल से आपका अभिषेक करेगा।"

सबकी ऐसी इच्छा देखकर भगवान् ने अभिषेक की अनुमति दे दी। कामधेनु ने अपने दिव्य दूध से यशोदानन्दन का अभिषेक किया। तदनन्तर ऐरावत का सूँड से लाये हुए गंगा जल से इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक किया। सभी ने मिलकर विधिवत् भगवान् की पूजा की। उस समय अपने अपने विमानों में बैठकर देवता, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यक, विद्याधर तथा चारण आदि वहाँ उपस्थित हुए। अभिषेक के निमित्त बड़ा भारी समाज लगा। भगवान् को एक दिव्य सिंहासन पर बिठाया गया। सर्वप्रथम नारदजी ने स्वर ब्रह्म विभूषिता वीणा के तारों पर तान छेड़ते हुए "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव। आदि भगवान् के सुमधुर नामों का कीर्तन किया। तदनन्तर तुम्बुरु आदि गन्धर्वों ने गोविन्द भगवान् की स्तुति के और भी गीत गाये। अन्य गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध तथा चारणगण भी भगवान् का संसार

दोषापहारी निर्मल यश गान कराने लगे। स्वर्ग की समस्त अप्सरायें भगवान् के अभिषेक के उपलक्ष्य में नृत्य करने के निमित्त समुपस्थित हुई थीं। देवेन्द्र का संकेत पाते ही वे अति आनन्दित होकर भाँति भाँति के हाव भावों को दिखाती हुई नृत्य करने लगीं। आज उन्होंने अपनी नृत्य कला को सार्थक समझा। जो कला भगवत् सेवा में काम आवे वास्तव में वही कला है, शेष कलायें तो कुकलायें हैं—उदर पूर्ति की साधिका मात्र हैं। आज अप्सराओं ने अपने नृत्य से सभी को विमुग्ध बना दिया।

अवसर पाकर मुख्य मुख्य देवता तथा लोकपालों ने भगवान् की स्तुति करके उनके ऊपर नन्दन कानन के सुमनों की वृष्टि की तीनों लोको में परमानन्द छा गया। गौओं के स्तनों से अपने आप ही दुग्ध बहने लगा। जिससे सम्पूर्ण पृथिवी दुग्ध मयी बन गई। मानों गौएँ भगवान् की प्रिया पृथिवी का भी अभिषेक कर रही हों। नदियों का जल अमृत तुल्य हो गया, उनके जल में नाना प्रकार के रसों का स्वाद आने लगा। वृक्ष अपने कोटरों से मधु चुआकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। असमय में ही सभी में पुष्प फल आने लगे। बिना जोते बोये ही ओषधियाँ उत्पन्न होने लगीं। पर्वतों के भीतर जो बहुमूल्य मणियाँ छिपी हुई थीं वे प्रत्यक्ष प्रकट दिखाई देने लगीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार भगवान् का बड़े ठाठबाट तथा समारोह के साथ अभिषेक हुआ। सर्वप्रथम इन्द्र ने भगवान् को 'गोविन्द' कहकर पुकारा। तदनन्तर सभी गोविन्द कह कर भगवान् को प्रणाम करने लगे। उस समय जो जीव स्वभाव से ही क्रूर थे वे भी वैरहीन हो गये। इस प्रकार गोप रूपधारी श्रीहरि का 'गोविन्द' पद पर अभिषेक

भगवान् की आज्ञा लेकर कामधेनु, देवेन्द्र तथा समस्त देव उपदेव प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम करके अपने अपने लोकों को चले गये। भगवान् भी जहाँ जा रहे थे, वहाँ के लिये चले गये। उन्हें इस उपाधि से हर्ष क्या होना था, वे निखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक स्वयं ही हैं। इस प्रकार भगवान् का नाम गोविन्द पड़ा। मुनियो! यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में गोवर्धन धारी गिरधारी भगवान् नन्द नन्दन की गोवर्धनधारी धारण लीला इस लीला में भगवान् ने इन्द्र का मदचूर्ण करके उनका उद्धार किया। अब जिस प्रकार जलेश वरुण को दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया, उस कथा को आगे कहूँगा। आशा है आप सब समाहित चित्त से श्रवण करेंगे।

छप्पय

यों गिरिवर हरि धारि इन्द्र मख भङ्ग करायो।
करि मदमर्दन फेरि क्षमा करि, मान बढ़ायो॥
हरि आयसु लै इन्द्र सुरभि निज लोक सिधाये।
कुञ्ज विहारी करत केलि वृन्दावन आये॥
जे श्रद्धातैं सुनहिं नर, जा चरित्र कूँ नेमतैं।
काम क्रोध नसि जाँइ रिपु, प्रभु पद पावें प्रेमतैं॥

भगवान् की वरुण के ऊपर अनुग्रह

(६५७)

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥ॐ

(श्री भा० १० स्क० २८ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

हरिवासर व्रत करैं सबहि व्रजमहँ नर नारी ।
निर्जल कछु फल खाइँ रहैं कछु दूधाधारी ॥
एकादशी पुनीत सुदी कातिककी आई ।
निराहार व्रजराज रहे दिन दयो बिताई ॥
जानि प्रात उठि चलि दये, स्नान करन यमुना निकट ।
धरि पट जलमहँ घुसि गये, जानी नहिँ बेला बिकट ॥

वैष्णव धर्म में एकादशी व्रत का बड़ा महात्म्य है। ऐसा वर्णन है कि एकादशी के दिन सभी पाप अन्न में आकर निवास करते हैं, अतः एकादशी को जो अन्न खाता है, वह पापों को खाता है। एकादशी को हरिवासर

ॐ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! द्वादशी को स्नान के लिये गये नन्दजी को लौट कर आते न देख कर गोप गण, हे राम! हे

भी कहा है। पुराणों में हम प्रधानतया चार बातों को ही देखते हैं। भगवान् के नाम और गुणों की महिमा, तुलसी की महिमा, गंगाजी की महिमा और एकादशी व्रत की महिमा। ऐसा स्यात ही कोई पुराण हो जिसमें इन बातों का उल्लेख न हो। एकादशी व्रत पर तो पुराणों में बहुत लिखा गया है। एक स्थान पर तो एकादशी व्रत की अत्यन्त महिमा बताते हुए कहा गया है। जैसे देवताओं में श्रीकृष्ण हैं, वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, देवताओं में जैसे गणेश, शास्त्रों में वेद, तीर्थों में गंगा, धातुओं में सुवर्ण, जीवों में वैष्णव, धनों में विद्या, साथियों में जैसे धर्मपत्नी, प्रमथों में रुद्र, श्रेय करने वालों में जैसे बुद्धि, इन्द्रियों में जैसे आत्मा, चंचलोंमें जैसे मन, गुरुओं में माता, प्रियों में जैसे पति, बलवानों में जैसे दैव, गणना करने वालों में काल, मित्रों मे जैसे सौशील्य, शत्रुओं में रोग, कीर्तिमन्तों में कीर्ति, घरवालों में जैसे घर, हिंसकों में खल, दुष्टों में जैसे पुंश्चली, तेजस्वियों में सूर्य, सहिष्णुओं मे पृथिवि, खाने वाले पदार्थों में अमृत, जलाने वालों मे अग्नि, धन देने वालों मे लक्ष्मी, सतीसाध्वियों में जैसे शिव प्रिया सती, प्रजा पतियों में ब्रह्मा, जलाशय में सागर, वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्री, वृक्षों में पीपल, पुष्पोंमें तुलसी मंजरी, मासों में मार्गशीष, ऋतुओं मे वसंत, आदित्यों में सूर्य, रुद्रों में शङ्कर, वसुओं मे भीष्म, वर्षों में भारतवर्ष, देवर्षियों में नारद, ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजाओं में राजा रामचन्द्र, सिद्धों में कपिल, ज्ञानी योगियों में सनत्कुमार, हाथियों में ऐरावत, पशुओंमें शरभ, पर्वतों में हिमालय, मणियोंमें

कृष्ण ! ऐसा कह कर चिल्लाने लगे। स्वजनों को अभय दान करने वाले श्रीहरि उनका करुण क्रन्दन सुनकर और पिता को वरुण ले गया है इस बात को जान कर वे वरुण के समीप गये।"

कौस्तुभमणि, पुण्यस्वरूपिणी नदियों में जैसे सरस्वती, गन्धर्वों में चित्ररथ, यक्षों में कुबेर, राक्षसों में सुमाली, स्त्रियों में शतरूपा, मनुष्यों में स्वायम्भुवमनु, सुन्दरी अप्सराओं में रम्भा, और जैसे समस्त माया करने वालियों में माया सर्व श्रेष्ठ है वैसे ही समस्त व्रतों में एकादशी व्रत सर्व श्रेष्ठ है। पुराणों में एकादशी व्रत सर्व श्रेष्ठ है। पुराणों में एकादशी व्रत विधानों का विस्तार से वर्णन है। दशमी के दिन एक समय हविष्यान्न भोजन करे, एकादशी को निर्जल रहे, द्वादशी को एक समय पारण करे। इस प्रकार उसकी विधि का वर्णन है। व्रज वासी सभी एकादशी व्रत [illegible]। कहते हैं श्रीकृष्ण का प्राकट्य भी एकादशी व्रत [illegible] हुआ। इसलिये नन्द जी सदा एकादशी व्रत किया [illegible], दिन भर व्रत करते रात्रि में जागरण करते [illegible] धाम से पारण करते।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! [illegible] पृथिवी निवासियों पर ही अपनी [illegible] थे, अपितु देवताओं और [illegible] धूलि से कृतार्थ करते थे। [illegible] मद को चूर किया। ये सब बातें [illegible]। [illegible] पाल वरुण तो आरम्भ में [illegible]। [illegible] भी संकल्प हुआ कि [illegible] दर्शन हो। हम भी [illegible] ऐश्वर्य को सार्थक करें। [illegible] करने का विचार किया।

कोटि का व्रत है। सिंघाड़े, कूटू, रामदाने का आटा, साग, फल आदि खाना यह केवल अन्न का बचाव मात्र है। नन्दजी सदा निराहार व्रत करते थे। दिन भर व्रत करते और रात्रि में जागरण करते। उस दिन कार्तिक शुक्ला देवोत्थापिनी एकादशी थी। शास्त्रीय विधि से उन्होंने घर को लिपाकर शालग्राम जी की स्थापना करके उनका पूजन अर्चन किया। रात्रि में जागरण करते भूख में नींद भी कम ही आती है। और जागरण की रात्रि भी बड़ी प्रतीत होती है। आधिरात्रि बीतने के अनन्तर ही नन्दजी को ऐसा लगा मानों अरुणोदय हो गया है। वे तुरन्त अपना रेशमी मुकुटा और जल की झारी लेकर एक सेवक के साथ यमुना किनारे पहुँचे। नित्यकृत्यों से निवृत्त होकर उन्होंने जल में प्रवेश किया। उस समय रात्रि शेष थी, आसुरी वेला थी, जल पर वरुण के दूतों का पहरा था। उस समय जल में प्रवेश करना निषेध था, किन्तु नन्दजी ने उधर ध्यान नहीं दिया। संयोग की बात कि उसी समय कोई वरुण का दूत जल के भीतर बैठा था वह उन्हें साधारण मनुष्य समझकर जल मार्ग से पकड़कर वरुण लोक में ले गया। वरुणजी ने जब देखा, मेरा भृत्य बिना जाने आनन्द कन्द श्रीकृष्ण चन्द्र जी के पिता को पकड़ लाया है तब वे उस पर बड़े क्रुद्ध हुए। सेवक ने कहा—"प्रभो! मैं तो बिना जाने आसुरी वेला में स्नान करते हुए इन्हें पकड़ लाया।"

वरुण ने सोचा—"कोई बात नहीं, भगवान् जो भी करते हैं, मङ्गल के ही निमित्त करते हैं। इसी कारण मेरे गृह को भगवान् अपने पादपद्मों का पराग से पावन बनावें। पिता को लेने जब वे मेरे लोक में आवेंगे तब मैं परिवार सहित उनकी पूजा कर सकूँगा।" यही सोचकर उन्होंने नन्दजी को बड़े आदर से अपने यहाँ रखा। इधर जब सेवक ने व्रजराज को डुबकी लगाये बड़ी देर हो गई वे जल से बाहर नहीं

निकले, तब तो उसे संदेह हुआ। वह भी जल में घुसा इधर उधर देखा, नन्दजी का कुछ पता ही न चला। तब तो वह बड़ा घबराया। दौड़ा दौड़ा व्रज में गया। सब गोप इकट्ठे हो गये, क्षण भर में बात व्रज भर में फैल गयी। सबने देखा—"अब श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई भी हमारी इस विपत्ति से रक्षा नहीं कर सकता। उन्होंने ही हमारी बड़ी बड़ी विपत्तियों से रक्षा की है, इस विपत्ति से भी वे ही बचावेंगे।" यह सोचकर वे राम कृष्ण का नाम ले लेकर करुण स्वर में क्रन्दन करने लगे। यशोदाजी और रोहिणीजी ने भी जब सुना, तो वे हाय हाय करके डकराने लगीं।

बलरामजी और श्रीकृष्णजी सुखपूर्वक शैया पर शयन कर रहे थे। माता तथा गोपों के करुण क्रन्दन को सुनकर भगवान् जगे और माता के समीप आकर बोले—"मैया! तू इतनी दुखी क्यों हो रही है? तू अपने दुःख का कारण मुझे बता।"

माता ने कहा—"बेटा! तेरे पिता जल में डूब गये। यमुना स्नान करने गये थे। गोता लगाने के अनन्तर उछले ही नहीं।"

श्रीकृष्ण ने क्रुद्ध होकर कहा—"जल का ऐसा साहस कि मेरे पिता को डुबा दे। माँ! तुम चिंता मत करो, मैं अभी पिताजी को लाता हूँ।"

इतना कहकर भगवान् गोपों के साथ उस घाट पर गये। वहाँ जाकर वे अपने योग प्रभाव से उसी शरीर द्वारा वरुण लोक में गये।

भगवान् हृषीकेश को अपने लोक में आते देखकर वरुण के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वह आनन्द में विभोर होकर नृत्य करने लगा। जीव के समस्त कर्म प्रभु प्राप्ति के ही निमित्त हैं भगवान् कृपा करके जिसके मन्दिर में पधार जायँ,

फिर कौन सा कृत्य शेष रह जाता है। लोकपाल जलेशने प्रभु दर्शनों से परम प्रमुदित होकर पूजन सामग्रियों द्वारा प्रेमपूर्वक उनका पूजन अर्चन किया। फिर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर गद्‌गद वाणी से कहने लगा—"प्रभो! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हुए, क्योंकि समस्त सिद्धियों को देने वाले आपके चरणारविन्द ही हैं। जो आपके चरण कमलों की श्रद्धाभक्ति सहित सेवा करते हैं वे संसार सागर से बिना प्रयास के पार हो जाते हैं। अब मेरे उद्धार में संदेह ही क्या रहा। आपके चरण दर्शनों से मैं कृतार्थ हो गया। आपकी भावमयी मनोमयी मूर्ति के चिंतन से ही सब शोक शान्त हो जाते हैं, मैंने तो आपके प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं। लोक सृष्टि की कल्पना करने वाली माया के आप ईश हैं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, सर्वज्ञ हैं तथा सबके परम आत्मा हैं। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ" केवल आपके चरण कमलों में श्रद्धा सहित प्रणाम ही करता हूँ" भगवान् ने कहा—"अरे, भाई! प्रणाम नमस्कार तो हो गयी, यह बताओ हमारे पिताजी कहाँ हैं सुना है उन्हें तुम अपने लोक में पकड़ लाये हो?" वरुण देव ने कहा—"नहीं, भगवन्! मैं तो नहीं पकड़ कर लाया, हाँ मेरे एक अज्ञानी भृत्य से भूल में यह अपराध अवश्य हो गया है। उसने जान बूझकर यह अपराध नहीं किया है। भ्रम वश-अज्ञान-वश-उसमें ऐसा अनुचित कार्य हो गया है। आप तो शरणागत वत्सल हैं कृपा के सागर हैं। उसके अज्ञान कृत अपराध को क्षमा कर दें।"

यह कह कहकर वरुण भीतर बैठे हुए नन्दजी को सत्कार पूर्वक लिया लाये और हाथ जोड़कर बोले—"हे पितृवत्सल प्रभो! ये आपके पूजनीय पिता हैं। मेरे भृत्य के कारण इन्हें कष्ट हुआ। किया तो उसने असम्य अपराध ही, किन्तु इससे मेरा तो लाभ

ही हो गया। मुझे घर बैठे आपके देवदुर्लभ दर्शन हो गये। मेरा गृह आपकी चरणधूलिसे पवित्र हो गया। आप तो घट घटकी जानने वाले हैं। प्राणि मात्र के साक्षी हैं; अतः मुझ पर आप क्रुद्ध न हों। सदा सेवक जानकर कृपा दृष्टि बनाये रखें।"

अपने पिताको देखकर भगवान् उठकर खड़े हो गये, उन्हें ऊँचे सिंहासन पर बिठाया। वरुणजी ने विधि-पूर्वक भगवान् की तथा नन्दजीकी भी पूजाकी। वरुणजी द्वारा भगवान् का ऐसा स्वागत सत्कार देखकर नन्दजी को बड़ा विस्मय हुआ। वे श्रीकृष्ण के ऐसे अमित प्रभाव और महान् ऐश्वर्यको देखकर चकित रह गये। भगवानने वरुणसे कहा—"जलेश! अब हम जाना चाहते हैं, तुम आनन्दपूर्वक अपने पदपर स्थित रहकर मेरा स्मरण किया करो।'

भगवान् की आज्ञा पाकर वरुणजी ने नन्द सहित भगवान् को साश्रुनयनोंसे प्रेम-पूर्वक विदा किया। भगवान तुरन्त उसी घाट पर आकर नंदजी के सहित प्रकट हो गये। सब उन्हें देखकर उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार अत्यन्त [illegible] मृतक बन्धुके जीवित होने पर उसके सम्बन्धी प्रसन्न होते हैं। सबने नन्दजीकी चरण वन्दना की, कोई उनसे गले लगकर मिले किसी का उन्होंने आलिंगन किया। गोपों ने पूछा—"बाबा! कहाँ चले गये थे?"

नंदजीने कहा—"भैया क्या बतावें। एक वरुणका सेवक मुझे पकड़कर वरुण लोक में ले गया। जब उसने मुझे अपराधी की भाँति वरुण के आगे उपस्थित किया तो मुझे पहिचानकर वरुण अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया। उसने मेरा बड़ा भारी स्वागत सत्कार किया। वह बड़ा दिव्यलोक था। [illegible] का बड़ा ऐश्वर्य है, वे पश्चिम दिशा के लोकपाल हैं [illegible]। मे कृष्ण भी वहाँ पहुँच गया। इसे देखकर तो वरुण ने

विनय दिखायी। सेवककी भाँति हाथ जोड़े इसके सम्मुख खड़ा विनती करता रहा, पीछे पीछे फिरता रहा। बड़ी भारी पूजा की। इसके पीछे मेरी भी पूजा हो गयी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! नन्दजी के मुख से जब गोपों ने उनके महान् ऐश्वर्य और प्रभाव की बातें सुनी, तो सभी उन्हें अब ईश्वर ही मानने लगे। अति उत्सुक होकर वे मन ही मन सोचने लगे—"यदि श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, तो कभी हमपर भी कृपा करेंगे क्या ? कभी हमें भी अपने अपार ऐश्वर्यका दर्शन करावेंगे क्या ? हमें तो यह अभी तक असुरों की मार धाड़ ही दिखाता रहा है। अपना ऐसा दिव्य प्रभाव तो कभी दिखाया नहीं। हमें भी कभी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे। हमें भी कभी वैकुण्ठके दर्शन करावेंगे।" भगवान् तो भक्तवांच्छा कल्पतरु हैं उनके भक्त मन से जो इच्छा करते हैं, उसे ही पूर्ण करते हैं। जिस प्रकार गोपोंको वैकुण्ठके दर्शन कराये उस कथाको मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

दूत पकरि लै गयो तुरत जलपति के पाहीं।
इत ब्रजमहँ नँदराय लौटिके आये नाहीं॥
समाचार सुनि दुखद वरुन के पास गये हरि।
सौंपे श्रीव्रजराज वरुनने बहु पूजा करि॥
पिता संग घनश्याम लै, आये ब्रजमहँ सुखसदन।
सुनि अति वैभव कृष्णको, भयो सबनिको मन मगन॥

गोपों को वैकुण्ठ के दर्शन

(६५८)

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१

(श्री भा० १० स्क० २८ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

गोप विचारें श्याम हमें वैकुण्ठ दिखावें ।
गोता हमहू बैठि ब्रह्मसरमाहि लगावें ॥
सबकी इच्छा जानि विष्णु निजलोक दिखायो ।
सुखमहँ सबई मग्न भये सब जगत भुलायो ॥
ब्रह्मानन्द चखाइ हरि, पुनि वैकुण्ठ दिखाइकें ।
भये चकित सब गोपगन, हरिपुर दर्शन पाइकें ॥

सुख, शान्ति, सन्तोष तथा आनन्द का एकमात्र स्थान प्रभु का लोक-परम पद ही है । उसे न जानकर जीव अज्ञानवश विषयों के सम्पादन के निमित्त ऐसे ऐसे काम्य कर्म करता है, कि उन्हें स्वयं ही करके रेशम के कीड़े के

---

१ श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपों का संकल्प देखकर भगवान् ने सोचा —'इन्हें मेरे धाम के दर्शन हों । विचारकर परम कारुणिक भगवान् ने उन गोपों को अपने ज्ञानातीत धाम के दर्शन कराये ।"

सदृश उनमें फँस जाता है और फिर चौरासी के चक्कर में पड़कर संसार मे भटकता रहता है। यदि जीव को अपनी वास्तिविकि गति का ज्ञान हो जाय, यदि वह अपने यथार्थ स्वरूप को समझ जाय, तो फिर इन विषयों के आने से उसे न हर्ष हो न विषाद। अरे, यह संसार तो आगमापायी है। इसमें कौन-सी वस्तु स्थिर है। जो उत्पन्न हुई है वह नष्ट होगी। जो जन्मा है वह मरेगा। वह पञ्चभूतों के बने पदार्थों में स्थायित्व कहाँ ये तो नाशवान् हैं ही। जो नाशवान् हैं वे सुखदायी हो नहीं सकते। सुख तो शाश्वत वस्तु में है और शाश्वत है केवल प्रभु का धाम, प्रभु का नाम, प्रभु का रूप और प्रभु की ललित लीलायें। जो इनके ही देखने, सुनने तथा कहने की इच्छा रखेगा, वह तो सुखी होगा, अन्यथा उसे दुःख ही उठाना पड़ेगा; अतः अपनी कोई इच्छा हो भी तो वह प्रभु के ही सम्बन्ध की हो और उसकी पूर्ति के लिये प्रभु से ही प्रार्थना भी करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी ने द्वादशीव्रत किया था। कार्तिक शुक्ला-त्रयोदशी के प्रातः उन्हें वरुण का दूत पकड़ कर ले गया। उसी दिन भगवान् कृष्ण वरुणलोक में जाकर नन्दजी को लिवा लाये। आते ही उन्होंने गोपों से भगवान् के परमैश्वर की बात कही। उसी समय सबके मन में भगवान् के वैकुण्ठ धाम देखने की इच्छा हुई। उस दिन देर हो गयी थी। मैया यशोदा बहुत व्याकुल हो रही थीं; अतः सब गोप घर गये। वह दिन आनन्दोत्सव में श्रीकृष्ण की महिमा वर्णन में बीत गया। अब चतुर्दशी का दिन आया। सब गोपों के मन में एक साथ ही वैकुण्ठ दर्शन की लालसा उत्कट हो उठी। सबने आकर श्रीकृष्ण से कहा—"कृष्ण! सुना है तुम्हारा लोक वरुणलोक से भी सुन्दर है, तुम उसी लोक में विराजते

हो। हमें अपना लोक दिखाओ।"

भगवान् बोले—"अरे, तुम लोगों ने आज भाँग तो नहीं पी ली है। भैया मेरा लोक तो यही वृन्दावन है। जहाँ गौएँ हैं, मैया और बाबा हैं, ये गोपियाँ हैं, और तुम सब ग्वाल हो। जहाँ यमुनाजी हैं गोवर्धन पर्वत है वही वृन्दावन मेरा धाम है। तुम कैसी सिड़ी पागलपने की बातें कर रहे हो।" गोपों ने कहा—"अरे, भैया! तू हमें बहकाता क्यों है, हमने सुना है वैकुण्ठलोक बड़ा अच्छा है। वहाँ की भूमि रमणीक अमृत के वापी, कुप तड़ाग हैं। वहाँ की सरितायें दिव्यामृत बहाती हैं। उनके तट दिव्य मणियों से बने हैं। वहाँ कल्प वृक्षों के दिव्य बाग हैं। खगमृग पशु पक्षी जो भी वहाँ हैं, दिव्य चिन्मय हैं। वहाँ के मन्दिर चिंतामणियों से बने हैं। वहाँ के निवासी शुद्ध सतोगुणी होते हैं। वहाँ के लोगों के वस्त्र आभूषण, मुकुट जो भी हैं सब दिव्य हैं।"

भगवान् बोले—"अरे, होंगे भैया दिव्य, दिव्यों में क्या रखा है। ये सब वृन्दावन से बढ़कर थोड़े ही हैं।"

गोप बोले—"अरे, ना भैया! देख, अपने बाप को तो तैंने वरुण लोक का ऐसा ऐश्वर्य दिखा दिया। अब हमारे लिये टाल मटोल करता है।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े। उन्होंने सोचा—"देखो, यह जीव अज्ञान के कारण नाना भाँति की छोटी बड़ी कामनाओं के कारण तथा काम्य कर्मों के कारण निरन्तर छोटी बड़ी ऊँची नीची योनियों में भ्रमण करता रहता है। कभी भौम स्वर्ग के सुखों को चाहता है, कभी पाताल स्वर्ग के सुखों को कभी इन्द्र लोक वरुण लोक कभी जनलोक कभी तपलोक और कभी ब्रह्मलोक, इसी प्रकार एक लोक के दूसरे लोक की इच्छा करते हुए घूमता रहता है। मेरा जो परमपद है, जिसकी बराबरी कोई भी

लोक नहीं कर सकता, उसमें मन को स्थिर नहीं करता। अपनी वास्तविक गति को पहिचान कर उसी में आरूढ़ हो जाय, तो इस जीव के समस्त शोक मोह तथा दुःखादि दूर हो जायँ।" यही सब सोचकर भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है चलो, मैं तुम्हें वरुण लोक से भी एक दिव्यलोक दिखाता हूँ।" यह कहकर उन्हें यमुना किनारे ले गये।"

यमुनाजी में एक ह्रद था जिसका नाम "ब्रह्मह्रद" था। भगवान् ने कहा—"तुम सब अपने वस्त्र उतार कर इस ह्रद में घुस जाओ और डुबकी लगाओ। फिर देखना क्या चमत्कार दिखाता है।"

यह सुनकर समस्त नन्दादि गोप उत्सुकता—पूर्वक अपने अपने वस्त्रों को उतार कर उस ब्रह्मह्रद में घुस गये। भगवान् ने कहा—"अब क्या देख रहे हो। मारो डुबकी।"

सबने भगवान् के कहने से जो डुबकी मारी तो सबके सब वैकुण्ठ लोक में पहुँच गये। वह अपूर्व लोक था। वहाँ की शोभा अवर्णनीय थी। वहाँ सभी चतुर्भुजी थे। सबका मुख कोटि चन्द्रमाओं के सदृश प्रकाशवान् था। सबके सिरों पर दिव्य मणियों से जटित परम प्रभाववान् मुकुट थे। उन सबके भूषण वसन अनुपम थे। सभी प्रकार की चिन्ताओं से वे रहित थे। ब्रह्मनन्द सुख में सभी नित्य निमग्न थे। शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए थे। गोपों ने वहाँ बलरामजी के सहित श्री कृष्ण को भी देखा। वे रत्नजटित मणिमय उच्च सिंहासन पर विराजमान थे। ब्रह्मादि देव इन्द्रादि लोकपाल सूत मागध वन्दियों की भाँति उनकी स्तुति कर रहे थे। सर्वत्र चहल पहल आनन्द और उत्सव हो रहा था। गोपों को देखकर श्रीकृष्ण सिंहासन से न उठे न जैसे व्रज में गहक कर छाती

से सटाकर मिलते थे वैसे मिले ही। गोपों ने देखा—"अरे भैया! हमारे कनुआ को यहा यह क्या रोग हो गया। इसके तो दो के स्थान में चार भुजाएँ हो गयीं। इसके सिर पर मोर पंख का मुकुट भी नहीं। लकुट भी नहीं, मुकुट भी नहीं, वंशी भी नहीं, गौएँ नहीं वृन्दावन नहीं। हाय! हमारा कृष्ण यहाँ कैसा कंगाल बन गया। चमकीले पत्थर मुकुट में लगा रखे हैं। गुंजाओं की माला नहीं, काली कमरी नहीं। हमसे यह मित्रों की भाँति मिलता नहीं। "सारे, कहके बोलता नहीं। ऐसे वैकुण्ठ को लेकर हम क्या करेंगे। वे सब तो मोर मुकुटधारी, वृन्दावनविहारी वंशीधारी द्विभुज श्रीकृष्ण के उपासक थे। यहाँ उन्हें चतुर्भुज रूप में देखकर डर गये इसके रूप में जब व्यवधान पड़ जाता है, तो भक्त का चित्त विचलित हो जाता है। यद्यपि वह ज्ञानातीत लोक था। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त और सनातन ब्रह्मज्योति स्वरूपधाम था। उसके दर्शन सभी को प्राप्त नहीं हो सकते। गुण सम्बन्धों को सर्वथा त्याग कर मुनिगण एकाग्रचित्त होकर ही बड़े यत्न से उसको प्राप्त करते हैं। गोप वहाँ जाकर आनन्द में मग्न हो गये, किन्तु द्विभुज कृष्ण को न देखकर तड़पने लगे। यद्यपि वह धाम ऐसा है, कि वहाँ जाकर कोई लौटता नहीं, किन्तु उन गोपों के मन में तो द्विभुज श्रीकृष्ण बसे हुए थे, उनका चित्त तो उनमें लगा था, अतः सर्वान्तर्यामी प्रभु ने उन्हें उनमें से निकाला। गोप जब उस ब्रह्महृदमें से उछले तो यमुना तट पर उन्हें त्रिभंग ललित गति से कदम्ब के नीचे खड़े वंशीबजाते मोर मुकुटधारी बनवारी दिखायी दिये। तुरन्त जल से निकलकर सबने उनकी चरणवन्दना की। वैकुण्ठलोक के दिव्य दर्शनों से सभी को संभ्रम हो रहा था। मूर्तिमान् वेद जिनकी स्तुति कर रहे थे, उन भगवान् को चतुर्भुज रूप में देखकर सब आश्चर्य चकित हो गये थे अब

जब उन्होंने द्विभुज श्रीकृष्ण को गोप वेष में मुरली बजाते देखा तो सभी को बड़ा हर्ष हुआ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् ने ऐसी मोहिनी मुसकान से सबकी ओर देखा, कि वे सब वैकुण्ठ की बातें भूलकर श्रीकृष्ण को पूर्ववत् अपना संगी सम्बन्धी समझकर प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगे।"

छप्पय

द्विभुज कृष्ण नहिं देखि मई तिनकी विभ्रम भति।
लख्यो चतुर्भुज रूप भयो सबकूँ विस्मय अति॥
ब्रह्मानन्द निमग्न गोप पुनि श्याम निकारे।
नटवर यमुना निकट निरखि सब भये सुखारे॥
यों वैकुण्ठ दिखाइकें, विस्मय कीयो दूर हरि।
नित नूतन अभिनय करें, छ्यललित अति वेष धरि॥

—::—

आगे की कथा बयालीसवें खण्ड में पढ़िये

मेरे महामना मालवीयजी

और

उनका अन्तिम संदेश

अधिकारियों ने श्रीब्रह्मचारीजी को विजयादशमी के अवसर पर रामलीला के जुलूस के सम्बन्ध में कारावास भेज दिया था। देश के कोने-कोने से उत्तर प्रदेश के प्रधान मन्त्री के पास सैकड़ों तार पत्र गये। रोग शय्या पर पड़े पड़े महामना मालवीय जी ने प्रधान मन्त्री और गृह मन्त्री को तार दिये। वे ही उनके अन्तिम तार थे, ब्रह्मचारीजी को छुड़ाने को उन्होंने श्रीपन्तजी और मिस्टर किदवई को जो पत्र लिखे वे ही अन्तिम पत्र थे। इन पत्रों को लिखकर और ब्रह्मचारीजी को छुड़ाकर उसके आठवें दिन वे इस असार संसार से चल बसे। इस पुस्तक में उन पत्रों के लिखने का बड़ा ही सरस, रोचक और हृदय-ग्राही इतिहास है। महामना मालवीयजी के सम्बन्ध के श्री ब्रह्मचारीजी महाराज के अनेकों सुखद संस्मरण हैं। अन्त में उनका पूरा ऐतिहासिक सन्देश भी है। पुस्तक बड़ी रोचक और ओजस्वी भाषा में लिखी गयी है कागज की कमी के कारण बहुत थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। गुटका के आकार के लगभग १३० पृष्ठ है। मूल्य २५ पैसे मात्र १ रु० से कम की वी० पी० न भेजी जायगी। स्वयं पढ़िये और मँगाकर वितरण कीजिये। समाप्त होने पर द्वितीय संस्करण शीघ्र न हो सकेगा।

॥ श्रीहरिः ॥

श्री बदरीनाथ दर्शन

(श्रीब्रह्मचारीजी का एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारीजी ने चार बार श्री बदरीनाथजी की यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है वे वहाँ महीनों रहे हैं। उत्तराखंड के छोटे बड़े सभी स्थानों में वे गये हैं। उत्तराखंड कैलाश, मानसरोवर, शतोपन्थ, लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं कि जहाँ पहाड़ी भी जाने से भयभीत होते हैं। उन स्थानों में ब्रह्मचारीजी गये हैं वहाँ का ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है कि पढ़ते पढ़ते वह दृश्य आँखों के सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्ड के सभी तीर्थों का इसमें सरस वर्णन है, सबकी पौराणिक कथायें हैं, किंवदन्तियाँ हैं, इतिहास हैं और यात्रावृत हैं। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं सभीका इस ग्रन्थ में समावेश है। बदरीनाथ जी की यात्रा पर इतना विशाल महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ग्रन्थ से ही घर बैठे उत्तराखण्ड के समस्त पुण्य स्थानों के रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं। यात्रा में आपके साथ यह पुस्तक रहे, तो फिर आपको किसी से कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता। लगभग सवा चार सौ पृष्ठ की सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४.०० मात्र है थोड़ी ही प्रतियाँ हैं, शीघ्र मँगावें।

व्यवस्थापक

सङ्कीर्तन भवन, झूसी, (प्रयाग)

शोक–शान्ति

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक मनोरंजक और तत्व ज्ञान पूर्ण पत्र)

इस पुस्तक के पीछे एक करुण इतिहास है। मद्रास के शुन्टूर प्रान्त का एक परम भावुक युवक श्रीब्रह्मचारीजी का परम भक्त था। अपने पिता का इकलौता अत्यन्त ही प्यारा दुलारा पुत्र था। वह त्रिवेणी सङ्गम पर अकस्मात स्नान करते समय डूबकर मर गया। उसके संस्मरणों को ब्रह्मचारीजी ने बड़ी ही करुण भाषा में लिखा है। पढ़ते-पढ़ते आँखें स्वतः बहने लगती हैं। फिर एक साल के पश्चात् उसके पिता को बड़ा ही तत्वज्ञानपूर्ण ५०।६० पृष्ठों का पत्र लिखा था। उस लिखे पत्रको हिन्दी और अँगरेजी में बहुत-सी प्रतिलिपियाँ हुईं उसे पढ़कर बहुत-से शोक संतप्त प्राणियों ने शान्ति लाभ की इसमें मृत्यु क्या है इसको बड़े ही सुन्दर ढँग से मनोरञ्जक कथायें कहकर वर्णन किया गया है, लेखक ने निजी जीवन के दृष्टान्त देकर पुस्तक को अत्यन्त उपादेय बना दिया है। अक्षर-अक्षर में विचारक लेखक की अनुभूति भरी हुई है। उसने हृदय खोलकर रख दिया है। एक दिन मरना सभी को है, अतः सबको मृत्यु स्वरूप समझ लेना चाहिए, जिन्हें अपने सम्बन्धी का शोक हो, उनके लिये तो यह रामबाण औषधि है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक का रहना आवश्यक है। ८० पृष्ठ की सुन्दर पुस्तक का मूल्य ३१ पैसे मात्र है। आज ही मँगाने को पत्र लिखें, समाप्त होने पर पछताना पड़ेगा।

पता—संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी, (प्रयाग)

भारतीय संस्कृति और शुद्धि

क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते हैं ?

आज सर्वत्र बलात् धर्म परिवर्तन हो रहे हैं। हिन्दू समाज से लाखों स्त्री, पुरुष सदा के लिये निकलकर विधर्मी बन रहे हैं, कुछ लोगों का हठ है कि जो अहिन्दू बन गये वे सदा के लिये हिन्दू समाज से गये, फिर वे हिन्दू हो ही नहीं सकते। श्री ब्रह्मचारीजी ने पुराण, स्मृति इतिहास और प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से यह सिद्ध किया है, कि हिन्दू समाज सदा से अहिन्दु को अपने में मिलता रहा है। जब से हिन्दू सामाज ने अन्य सम्प्रदाय वालों के लिये अपना द्वारा बन्द किया है, तभी से उसका ह्रास होने लगा है। बड़ी ही सरल, सुन्दर भाषा के शास्त्रीय विवेचन पढ़कर अहिन्दुओं को हिन्दु बनाइये। अपने समाज की उन्नति कीजिये। सुन्दर छपाई सफाई युक्त ७५ पृष्ठ की पुस्तक केवल ३१ पैसे मात्र।

पता—संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी, प्रयाग

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में), ६६ खण्ड छप चुके हैं। खण्ड का मू० १.२५ पै० डाकव्यय पृथक्।
२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठकी, सजिल्द मू० ५.२५
३—सटीक भागवत चरित—बारह बारह सौ पृष्ठ के सजिल्द दोनों का मू० १३.००
४—बदरीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ४.००
५—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० सं० ३५६ मू० २.७५
६—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २.००
७—कृष्ण चरित—मू० २.००
८—मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० २.५०
९—गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें मू० २.००
१०—श्री चैतन्य चरितावली—पाँच खंडोंमें प्रथम खंड का मू० १.०
११—नाम संकीर्तन महिमा—पृष्ठ संख्या ६६ मू० ०.५०
१२—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ०.५०
१३—भागवती कथा की वानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
१४—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ०.१
१५—मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखदसंस्मरण पृ०सं०१३० मू
१६—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—(शास्त्रीय विवेचन) मू० ०.३
१७—प्रयाग माहात्म्य—मू० ०.१२
१८—राघवेन्दु चरित—मू० ०.३१
१९—भागवत चरित की वानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
२०—गोविन्द-दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पयछंदोंमें) मू० ०.१५
२१—आलवन्दार स्तोत्र—छप्पयछन्दों सहित मू० ०.२५
२२—प्रभुपूजा पद्धति मू० ०.२५
२३—वृन्दावन माहात्म्य—मू० ०.८
२४—गोपीगीत—अमूल्य।

मुद्रक—पं० वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज इलाहाबाद